# भवभूति।

भवभूतेःसंबंधाद्भूधरभूरेवभारतीभाति।
एतत्कृतकारुण्येकिमन्यथारोदितिग्रावा ॥ *

सप्तशती।

पीछे कालिदासके विषयमें लिखतीबार यह कहा था कि उसके विषयमें विश्वासपात्र परिचय अणुमात्र भी नहीं मिलता। और तो क्या पर उसकी असामान्य कीर्त्तिकौमुदी यदि उसके जीवित कालमेंही न प्रकाशित होती, और वह नाटकोंको न लिखता, तौ केवल उसके काव्योंद्वारा आज दिन उसके नामका भी पता न लगता। आनंदका विषयहै कि भवभूतिके विषयमें यह बात सर्वथा चरितार्थ नहीं होती। उसके जीवनकाल तथा वसति स्थानादिका यद्यपि कालिदासकी नाईं कहीं कुछ पता नहीं लगता, तथापि निजके कुलवृत्तांतका भावी लोगोंको परिचय मिलनेकी तजवीज उसने कररखी है। उसके तीनों नाटकोंके आदिमें आगे लिखा हुआ वृत्तांत पाया जाता है। दक्षिण देशांतर्गत पद्मपुर नामक नगरीमें डंबरनामके तपोनिष्ठ ब्राह्मण

---

* भवभूतिके संबंधसे विचार कियाजाय तो सरस्वती पर्वतकी कन्या पार्वती होंगीसी जानपड़ती हैं। क्योंकि यदि ऐसा न होता तो उसके करुणरसद्वारा पाषाण कर क्योंरोने लगता।

रहा करते थे। उनके कुलमें गोपाल भट्टने जन्म ग्रहण कियाथा। उसका पुत्र नीलकण्ठ भवभूतिका पिता था। भवभूतिकी मांका नाम था। जातुकर्णी। आगे अपने कविको भट्ट श्रीकण्ठनाम भी प्राप्त हुआथा। भवभूति के विषयमें सच्चा वृत्तांत इससे अधिक और नहीं पाया जाता। यों तो लोगोंमें कई प्रकारकी चर्चा होती रहती हैं पर वे सब केवल कल्पनामात्र हैं।

हमारे यहां प्राचीन संस्कृत कवियोंके विषयमें अनेक दंत कथाएं पायीं जाती हैं। उनमें भवभूतिके विषयमें यह सुना जाता है कि भोज राजाके आश्रित जो अनेक पंडितगण थे उनमें वह भी था; और कविताके विषयमें उसे कालिदासकी बड़ी स्पर्द्धा थी। यह तो केवल सामान्य बात है पर विशेषरूपसे यहभी सुना जाता है कि भवभूतिके 'उत्तर रामचरित' नाटकको पढ़ कालिदास अत्यंत विस्मित हुआ और आनंदमग्न हो उसे माथेपर रख धन्य धन्य कह वह नाचने लगा।

किमपिकिमपिमंदंमंदमासत्तियोगा
दविरलितकपोलंजल्पतोरक्रमेण।
अशिथिलपरिरंभव्यापृतैकैकदोष्णो-
रविदितगतयामारात्रिरेवंव्यरंसीत्॥

भवभूतिके उक्त श्लोकको पढ़ कालिदासने उसे सूचित किया कि अंतिम चरणके 'एवं' पदके स्थानमें 'एव' पद प्रयुक्त किया जाय तो अर्थ विशेष शोभाप्रद होगा। * सुना जाता है कि कालिदासकी

* वह ऐसे कि पूर्व्वोक्त प्रकारसे बोलते २ 'रात्रिमात्र' शेष होगयी पर कहानी शेष नहीं हुई। और पूर्व्व पाठ का अर्थ इतनाही होता था कि इस प्रकार से बोलते २ रात्रि शेष होगयी; इसकी अपेक्षा उक्त अर्थ अधिकतर सरस है सो अर्थमर्मज्ञ पाठक सहजही में जान सकते हैं।

उक्त सूचनाको भवभूतिने स्वीकार किया, और आज दिन उक्त श्लोकमें वही पाठ पाया जाता है। उक्त मनोरंजक कथामें कोई बात असंभवसी नहीं जानपड़ती; क्योंकि उस नाटककी योग्यता ऐसीही है कि 'शकुंतला' नाटक लिखनेवाला भी उसे अपने सीसपर धारणकरे; साथही यहभी लक्षित होता है कि कालिदास जैसाही विशालबुद्धि सम्पन्न था वैसाही वह अत्यन्त निरभिमानी भी था। परन्तु सखेद लिखना पड़ताहै कि भवभूतिके नाटक कवीश्वरोंको अल्प परिश्रम और अल्प अवकाशमें मान्य नहीं हुए;

नैसर्गिकीसुरभिणः कुसुमस्यसिद्धा
मूर्ध्निस्थितिर्नचरणैरवताडनानि ।

"सुगन्धयुक्त पुष्पोंकी प्रकृतिसुलभ यही योग्यता है कि सब लोग उन्हें मस्तकपर धारण करें, न कि उन्हें पददलित करें" यह सब है सच्चा, पर जगमें इसके विपरीत अनुभव प्राप्त होते हैं। इसी देशमें नहीं, किंतु अनेक देशोंमें ऐसी कई घटनाएं दृष्टिगत हुई हैं कि यथार्थपरीक्षक एवं रसिकके अभावके कारण बहुतेरोंके नैसर्गिक बुद्धिगुण उत्कर्षको प्राप्त न हो वैसेही अप्रसिद्ध बने रहे; और बहुतेरोंको तो मूर्ख एवं अरसिक लोगोंमें सुदुःसह दुःखपूर्वक अपने दिन काटने पड़े। भवभूतिके नाटकोंसे स्पष्ट बोध होता है कि उसकीभी ऐसीही दुर्दशा हुई होगी।

'उत्तर रामचरित' के प्रारम्भमें सूत्रधार कहता है,

सर्व्वथाव्यवहर्त्तव्ये कुतोह्यवचनीयता ।
यथास्त्रीणांतथावाचां साधुत्वेदुर्जनोजनः ॥

"लोगोंमें नामधराई हुए बिना रहना बड़ा कठिन है; तिसमें भी

स्त्रियोंकी पतिव्रतता और वाणीकी निर्दोषता तो लोगोंको नितान्त दुःसह बोध होती हैं । उसमें कुछ न कुछ दोष निकालनेको वे अपना परम-कर्त्तव्य मानते हैं।" वैसेही 'महावीरचरित' के अंतकी चर्चरी (भरतवाक्य-)

लोकेनित्यप्रमोदंविदधतुकवयःश्लोकमाप्तप्रसादं।
संख्यावंतोऽपिभूम्नापरकृतिषुमुदंसंप्रधार्य्यप्रयांतु॥

"प्रसादगुणयुक्त अर्थात् अत्यन्त सरल एवं सुबोध काव्य कवि-गण प्रणीत करें; और बुद्धिमान् पण्डितगण उन्हें सादर पढ़ उनका गुण अङ्गीकृत करें।"

भवभूति अपने समकालीनलोगों द्वारा यदि समादृत कियागया होता और सब लोगोंका वह प्रीतिपात्र होता तो यह कब सम्भव था कि ऐसी कृतघ्नतापूरित उक्ति उसके मुखसे विनिसृत होतीं ?

यह तो कुछ भी नहीं है; इसकी अपेक्षा नितान्त गंभीर एवं मर्मस्पृक् उक्ति 'मालतीमाधव' नाटकके आदिमें पायी जाती है; वह पाठकोंके हृदयपरभी वैसीही गहरी चोट करती है:—

येनामकेचिदिहनःप्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्तुतेकिमपितान्प्रतिनैषयत्नः।
उत्पत्स्यतेऽस्तिममकोऽपिसमानधर्म्मा
कालोह्ययंनिरवधिर्विपुला च पृथ्वी॥

"जो लोग हमारी हँसी कर उसे लोगोंमें फैलाते हैं, उन्हें यह समझलेना चाहिये कि हमने यह परिश्रम उनके लिये कदापि नहीं किया है; हमारे कैसे मनोधर्मका कोई न कोई आगे पीछे कभी अवश्यही उत्पन्न होगा क्योंकि काल अनन्त है और वसुन्धराभी वैसीही विस्तीर्ण है।"

अरसिकलोगोंको यथार्थ योग्यताकी परख न होनेके कारण जिसे उन लोगोंने क्षुद्रवत् माना उस कविमणिकी भविष्यरूप यथार्थ उक्ति उक्त कैसी उदार एवं सकरुण क्या कहीं भी दृष्टिपथमें आसकती है! कल्पनामय सकरुण घटनाओंका वर्णनकर भवभूति अपने पाठकोंको अनेक स्थानपर द्रवित करता है, परन्तु उक्त श्लोकमें उसकी निजकी सच्ची अवस्थाको पढ़ हृदय जैसा करुणाप्लावित होता है वैसा अपर घटनाके वर्णनसे स्यातही होता हो।

उक्त पद्योंको पढ़ कालिदास और भवभूतिकी समकालीनताके विषयमें हमारे पाठकोंको किंचित् संदेह अवश्यही उत्पन्न होगा; क्योंकि जिसकी अद्वितीयताके कारण अनामिकाका नाम सार्थक हुआ * वह कहां और जिसकी सर्व्व साधारणमें कीर्त्ति होना तो दूर रहा, पर जिसे कविताका रसज्ञ तक न मिलनेके कारण, कालकी अनंतता और धरतीकी विस्तीर्णता पर अपनी आशाको स्थित करना पड़ा, वह बापुरा कवि कहां!

इनके अतिरिक्त और भी ऐसी अनेक बातें हैं जिनकेद्वारा उक्त विवादका प्रायः निर्णय होजाता है। यहांपर उनका सविस्तर उल्लिखित होना आवश्यक जान पड़ता है।

कालिदास और भवभूति समकालीन न थे यह माननेके लिये पहिला बड़ाभारी प्रमाण तो यह है कि पहिलेकी कीर्त्ति प्राचीन कालसेही आबालवृद्धोंको विदित है पर दूसरेकी केवल पंडित लोगोंकोही ज्ञात है। कालिदास अपने जीवित कालमेंही सर्व्वसाधारणका ऐसा जनप्रिय होगया था कि उसकी वस्तुकी चर्चा होतेही सब लोग उसे समादृत करते थे। विक्रमोर्वशी नाटकके आदिमें सूत्रधार सब लोगोंसे इतनीही प्रार्थना करता है कि—

* देखो 'कालिदास' पृष्ठ २२ की टिप्पणी।

प्रणयिषुदाक्षिण्यवशादथवासद्वस्तुबहुमानात्।
शृणुतजनाअवधानात्क्रियामिमांकालिदासस्य ॥

“ दर्शकगण ! इस नाटकमें जो नायक और नायिका हैं उनके विषयमें समादरपूर्व्वक वा यह सुभणित कालिदासकी है यह जानकर हमारे अभिनयकी ओर दत्तचित्त हूजिये। ”

उक्त सूत्रधारोक्तिद्वारा उक्त दोनों कवियोंका महदंतर सहजही में लक्षित होता है। जब कालिदास तत्कालीन लोगोंको इतना वन्द्य था तब जिस कविकी कृतिको वह स्वयं समादृत करता था वह कवि लोगों को किस प्रकार बहुमान्य होना चाहिये था। पर यह जनप्रियताका सुख विचारे भवभूतिके नसीबमें न बदा था। यह बात उसके नाटकों द्वारा स्पष्टरूपसे दृष्टिगत होती है।

भवभूतिको राजाश्रय प्राप्त था कहना युक्तिसंगत नहीं बोध होता, क्योंकि यदि वैसा होता तौ उसके तीनों नाटकोंका प्रयोग कालप्रियनाथकी यात्राके प्रसंगपरही क्यों किया जाता। * कालिदासके किसी नाटकके आदिमें रंगभूमिके स्थलका उल्लेख नहीं पाया जाता, इससे यही अनुमित होता है कि उनका अभिनय राज मंदिरादिमें ही होता होगा। पर वह सौभाग्य भवभूतिको कधीभी न प्राप्तहोनेके कारण जान पड़ता है उसने अपने नाटक यात्रादि जनसमाजोंके प्रसंगपरही अभिनीत कराये हों। और इसकी अपेक्षा अधिक विश्वासपात्र प्रमाण स्वयं उसके नाटकमें ही पायाजाता है। कालिदासके समस्त ग्रंथोंमें संस्कृत भाषाका शुद्धस्वरूप दृष्टिगत होता है। वाक्यों की रचना सरल, उनमें कृत्रिमता लेशमात्रको नहीं पायी जाती; वैसेही शब्दजालभी सुबोध और समास थोड़े थोड़े शब्दोंकेही पायेजाते हैं। कालिदासके

* उक्त स्थलका उल्लेख इस कविके तीनों नाटकों के आदिमें पाया जाता है।

सब ग्रंथोंमें खोज करनेसे चार पांचसे अधिक पदोंके समास बहुतही थोड़े मिलेंगे। इसके उदाहरण स्वरूपमें 'मेघदूतका' नामोल्लेख किया जा सकता है। वह पूरा ग्रंथ मंदाक्रांता कैसे दीर्घवृत्तमें प्रणीत किया जानेपरभी उसमें समास प्राय: छोटे छोटेही हैं। पर भाषाकी यह प्रणाली भवभूतिके नाटकोंमें नहीं दीख पड़ती। बाण, श्रीहर्षादि तदनंतरके कवियोंने लंबे लंबे समासोंकी जो कृत्रिम रचना धीरे धीरे प्रचलित की वही उनमें जहां तहां दीख पड़ती है। उसी प्रकारसे 'मालती माधव' नाटकमें बौद्धमतकी स्त्रियोंको प्रधानपात्र बना, कापालादि घोर पंथानुयायी लोगोंका भी संबंध लाया गया है। पर ऐसों कैसा संबंध कालिदासके नाटकमें यत्किंचित् भी नहीं पाया जाता। 'मृच्छकटिक' 'प्रबोधचन्द्रोदय' 'नागानन्द' आदि नाटकों और 'दशकुमारचरित' प्रभृति ग्रंथों में मात्र उस समयके लोगोंकी दशाका कुछ स्वरूप लक्षित होता। एतावता भवभूतिको कालिदासके समयका माननेकी अपेक्षा, उक्त ग्रन्थ जिससमय लिखे गये उसी लागपर वह था मानना अधिक सयुक्तिक जान पड़ता है। इसके अतिरिक्त भवभूतिके नाटकोंमें कालिदासके ग्रंथोंको अनुलक्षितकर लिखेहुए और उनमें से लियेहुए कुछ शब्दभी पाये जाते हैं। 'मालतीमाधव' के दूसरे अंकमें :—

"कामंदकी। अयि, सरले! किमत्रमया भगवत्या वश्यकर्यंकर्त्तुम्? प्रभवति प्राय: कुमारिकाणां जनयिता दैवंच। यच्चकिल कौशिकी शकुन्तला दुष्यन्तमप्सरा: पुरूरवसं चकमे इत्याख्यानविद आचक्षते। वासवदत्ताच राज्ञे संजयाय पित्राप्रदत्तमात्मानमुदयनाय प्रायच्छदित्यादि। तदपि साहसक्यमित्यनुपदेष्टव्यकल्पं सर्वथा।"

उक्त संवाद में 'शकुन्तला' और 'विक्रमोर्वशी' नाटकोंका तथा 'मेघदूतादि' ग्रंथ प्रसिद्ध वासवदत्ता और उदयन राजाका संबंध लाया गया है सो स्पष्टही है।

उक्त ग्रंथके नवम अंकमें माधव मालतीके विरहसे कातरहुआ प्रदर्शित किया गया है। इस अंकके विषयमें कई स्थानोंपर ऐसा भासित होता है कि मानो कविने 'मेघदूत' और 'विक्रमोर्वशी' के चौथे अंकको अनुकृतकर इसे लिखा हो।

'महावीरचरित' के सातवें अंकमें :—

विभीषण:। देव.

एतेतेसुरसिंधुधौतदृषदःकर्पूरखंडोज्ज्वलाः
पादाजर्जरभूर्जवल्कलभृतो"गौरीगुरोःपावनाः"। ⊛

उसी अंकमें पुनः

'सुग्रीवः * *

उत्खातस्त्रिभुवनकंटकोऽतिदृप्य
होर्दंडांचितमहिमाप्ययंनिकारः।
देव्याश्चप्रतिशमितस्तथात्रसंधा
निर्व्यूढाप्रगुणविभीषणाभिषेकात्॥

मननपूर्व्वक यदि आलोचना की जाय तो हम समझते हैं कि उक्त कैसी सदृशता और भी अन्यस्थलोंपर उपलब्ध होगी।

---

⊛ कार्य्यासैकतलीनहंसमिथुनास्रोतोवहामालिनी।
पादास्तामभितोनिषण्णहरिणा "गौरीगुरोःपावनाः"
शकुंतला ६।

* * उत्खातलोकत्रयकंटकेऽपि
सत्यप्रतिज्ञेऽप्यविकत्थनेऽपि।
त्वांप्रत्यकस्मात्कलुषप्रवृत्तौ
अस्त्येवमन्युर्भरताग्रजेमे॥ रघुवंश १४।

उक्त विवाद हमारे पाठकोंको बहुधा अभीष्ट न होगा, किंतु पूर्वोल्लिखित मनोहर आख्यायिकाके विरोधी प्रमाणोंको, जो ऊपर प्रदर्शित किये गये हैं, पढ़ वे नितान्त हताश होजायँगे। क्या किया जाय इसकेलिये कोई उपाय नहीं है। इस संसारमें सत्यता और मनोहरताकी एकत्र स्थितिका नित्य विधान नहीं पाया जाता; अतः जिसे केवल सत्यताकाही अनुधावन करना हो उसे अनेक प्रसंगों पर साहसपूर्व्वक अपने परम प्रिय मत और नैसर्गिक वृत्तियोंको भी सत्यप्रीत्यर्थ जलांजलि देनी पड़ती है। अब कोई यह प्रश्न करे कि, उक्त बात सच्ची कैसी दिखनेपर भी उसे नई गढ़ंत कैसे कह सकते हैं! वा वह वैसी ही मानली जाय तो उसके रचयिताका क्या अभिप्राय मानना चाहिये। इसके उत्तरमें हम इतनाही कहते हैं कि यह बात केवल कालिदास और भवभूतिके विषयमेंही वा हमारे देशके विषयमेंही नहीं पायी जाती, तौ मनुष्यके मनकी सर्वत्र ऐसीही प्रवृत्ति दीख पड़ती है कि जहां कोई दो अतिविख्यात मनुष्य मिले कि किसी न किसी प्रकारसे उनका मेल मिला दिया जाता है। दैवात् यदि यह लोग बहुत पुराने रहे तो उनका गुत्थमगुत्था करदेनेवालोंकी कल्पनाशक्तिको बहुत कुछ अनुकूलता प्राप्त हो जाती है। मनुष्यकी इस प्रकृतिसुलभ मनोवृत्तिका वर्णन सब देशोंकी आद्यविद्याके कथासमूहों में ( जिन्हें अंगरेज़ी में Mythology कहते हैं ) बहुत उत्तम प्रकारका पाया जाता है। वह इस प्रकार कि जब मनुष्य अज्ञान अवस्थामें रहता है और क्रमशः उसकी ईश्वरप्रदत्त बुद्धिका विकास होने लगता है, तब चन्द्र सूर्य्यादि आकाशके ज्योतिर्मय पदार्थ, वैसेही समुद्र, पर्वत और नदी आदिकी ओर देखकर वह आश्चर्य्यचकित होता है, और उसके चित्तमें यह पूज्यभाव आविर्भूत होता है कि यह सब मेरी अपेक्षा श्रेष्ठ देवतागण हैं। अनंतर वह अपने समस्त धर्म्म उनके विषयमें कल्पितकर उनके पर-

स्पर संबंध जोड़ने लगता है। इस प्रकारसे एक बार आरंभ हो गया कि पितृपुत्रपरंपराद्वारा उन्हीं कथाओंका विस्तार हो पूर्वोक्त कथा समूह बनजाता है। हिंदू, ग्रीक और रोमनप्रभृति जातियोंके प्राचीन कथासमूहोंके विषय प्रकृतिके भव्य एवं रमणीक पदार्थही पाये जाते हैं, और उनकी परस्परकी तुलना आधुनिक भाषाभिज्ञोंकेलिये बड़ागंभीर एवं रमणीक विषय हुआ है। सारांश मनुष्योंमें यह मनोधर्म निसर्गतः बलिष्ठ रहता है और नामी ग्रामी लोगोंके विषयमें सर्व साधारणमें जिन बातोंकी चर्चा हुआ करती हैं उनका प्रायः कारण यही कहा जाता है। 'दशकुमारचरित' संज्ञक ग्रंथके कर्त्ता दंडीके, कि जिसका नाम पीछे एक श्लोक में आचुका है, और कालिदासके विषयमें भी एक ऐसीही बात कही सुनी जाती है; पर वह भी पूर्वोक्त कारणोंद्वारा केवल असंभवही नहीं निश्चित होती किंतु अप्रयोजनीय एवं ग्रामीण प्रमाणित होती है। * अब एक बात देशान्तरकी उदाहृत करते हैं। ग्रीकलोगोंके सुप्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता सोलन् और प्राचीन लिडिया देशके अमित धनसंपन्न एवं परम प्रभावशाली राजा क्रीसस्के विषयमें इतिहासमें एक अद्भुत बात प्रसिद्ध है। पर आधुनिक इतिहासलेखकगण यह कहते हैं कि शताब्दीके हिसाबसे इस बातका मेल ठीक २ नहीं मिलता, इसी बातको प्रधानता दे उसके सर्वप्रसिद्ध होनेपर भी वे लोग उसे प्रमाणित नहीं मानते। इस प्रकारसे इन सब बातोंके विषयमें यथावत् मीमांसा करती बार संस्कृत भाषाके उभय कवि चूडामणिके विषयमें उनकी कल्पनासृष्टि चतुर जातिमें उक्त चित्तवेधक आख्यायिकापरंपरासे चली आयी है तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है?

---

* इसका उल्लेख आगे दंडीके निबंधमें किया जायगा।

अब विषय वर्णनानुरोधके कारण यहांपर एक परम महत्त्वकी बातका उल्लेख आवश्यक जान पड़ता है। वह यह कि, इस प्रकारकी आख्यायिका वास्तवमें रहती तो असत्यही हैं पर असत्यताके कारण वे त्याज्य नहीं होसकतीं; बरन विद्वानोंको उचित है कि वे आदरपूर्व्वक उनका संग्रह करैं। क्योंकि प्रथम तो वे मनरंजनकरनेवाली रहती हैं; और दूसरे उनके अयथार्थ होनेपर भी उनमें यथार्थताका बहुतांश विद्यमान रहता है। वह इस रूपसे कि उनमें सर्व्वसाधारणका मत संक्षिप्त रूपसे पाया जाता है। उक्त भवभूति विषयक बात यदि सत्य होती तो आजादिन उसकी योग्यता इतनी बड़ी न मानी जाती, पर वह निरी झूठ है इससे आगेके लोगोंमें उसकी कैसी चाह हुई होगी सो सहजहीमें अनुमित हो सकता है। यदि वह कालिदासके समयमें ही होता, तो जिन लोगोंने 'शकुंतला' और 'विक्रमोर्वशी' की प्रशंसा की, उन्हीं लोगोंने 'उत्तररामचरित' और 'मालतीमाधव' की भी प्रशंसा की होती इसमें कुछ विशेषता न थी। पर उस कविकेशरीकी गर्जना शेष होजाने पर जब चारों ओर सन्नाटा छा गया, और लोगोंको जान पड़ने लगा कि अब पुनः वैसी गर्जनाका होना कठिन है तब पहिलेका स्मरण दिलानेवाले सुतरां उससे भी कहीं प्रचंड दूसरेकी गंभीर गर्जना कर्णकुहरमें प्रविष्ट होने लगी, यह बात वास्तवमें अधिक चमत्कारजनक जान पड़ती है।

कदाचित् बहुतेरे लोग यह शंका उपस्थित करनेमें तनिक भी न हिचकेंगे कि ऊपर कविने निजका जो परिचय दिया है और अपने समकालीनलोगोंका अधिक्षेप किया है वह उसे आत्मश्लाघाके दोषसे दूषित करता है। पर नेक विचारांश करनेपर तत्क्षण ज्ञात हो जायगा कि उक्त विचार सर्व्वथा यथार्थ नहीं है। कवि आदिकोंकी सुप्रसिद्धि प्रायः उनके परलोकयात्री होने पर ही हुआ करती है; क्योंकि उनके जी-

वितकालमें उनके उत्कर्षको देख जलनेवाले मत्सरीलोग उनकी ख्यातिके बाधक होजाते हैं; सारज्ञ एवं निर्मल बुद्धिवालेलोग बहुत थोड़े रहनेके कारण वे दुष्टोंका कुछ नहीं करसकते। ऐसी अवस्थामें उनका यथार्थ वृत्तांत लिख रखनेवाला उन्हें कौन मिल सकता है? यही जान बूझकर कई नामीलोगोंने आत्मचरित्र स्वयं लिपिबद्ध कर रखे हैं, उसी प्रकारसे यदि और लोग भी कर रखते तो आज दिन जगको कैसा अ-मूल्यलाभ प्राप्त होता! मानलो कि संप्रति इंग्लैंड देशमें यदि किसीको शेक्सपियर कविका स्वरचित सविस्तर चरित मिलजाय तो उसे लेने केलिये सब देशोंसे मांगकी कैसी धूम मचेगी! तात्पर्य यह प्रचार यदि पूर्व्वसे प्रचलित हो जाता तो उसकेद्वारा एक और भी अनर्थ बहुत कुछ दूर होजाता। वह यह कि ग्रन्थोंमें क्षेपक और अन्य लोगोंके विचार घोराकर अपने कहनेको जैसा आज क्षुद्र ग्रंथलेखकोंको अवसर मि-लगया है वैसा उन्हें कदापि न मिलने पाता। इससे यही प्रतिपादित हुआ दीख पड़ेगा कि महान् ग्रंथकारोंके आत्मविषयक लेख दूषणाई नहीं हैं किंतु वे परमोपयोगी हैं। अपर संस्कृतके कवि और नाटक ले-खकोंके नाम प्रायः उनके २ ग्रंथोंमें लिखेहुए पाये जाते हैं। 'मुद्राराक्षस' 'मृच्छकटिक' आदि नाटकों और कादंबरी प्रभृति काव्योंके आदि में उनके रचयिताओंका आत्मपरिचय बहुत कुछ पाया जाता है। अतः एतदर्थ भवभूतिको दूषित करना सर्वथा अयोग्य है। * अब यह बात सच है कि कालिदासका नाम उसके नाटकोंको छोड़ उसके अन्य ग्रंथोंमेंसे किसी ग्रंथमें भी नहीं पाया जाता। और नाटकोंमें भी जो उ-सने अपना नाम लिखा है सो केवल नाटक प्रणेतृगणोंकी प्रथानुसारही

---

* इस विषयकी अधिक विवेचना देखनी हो तो मुन्शी नवलकिशोर सी, आई, ई के मुद्रणालय लखनऊसे मदनुवादित 'निबंधमालादर्श' को मंगाकर उसके 'अभिमान' संज्ञक लेखको पढ़िये गा।

लिखासा जान पड़ता है। पर कालिदासकी तो बातही कुछ निराली थी। उसके काव्योंमें उसके निसर्गजात जो गुण झलकते हैं उनमें शालीनता यथार्थमें प्रमुख है; पर उसकी भणित प्रथमहीसे सर्व्वमान्य होजानेके कारण शोभाको प्राप्त हो गयी, यही कारण है कि स्वयं स्व-गुण वर्णनका अश्लाघ्य कर्म उसे नहीं भोगना पड़ा। भवभूतिकी अ-वस्था वैसी अनुकूल न होनेके कारण स्वयं निजके गुण लिखनेके अ-तिरिक्त उसे उपायांतर हीन था। वैसा यदि वह न करता तो उसका नाम लुप्त हो उसके ग्रंथ लुप्त होजानेका भय था;इसी भयके कारण कहीं समूचे श्लोक कहीं एक २ दो २ चरण, और कहीं केवल शब्दही उ-सने तीनों नाटकोंमें एकसे प्रयुक्त किये हैं ऐसा अनुमान होता है। सा-रांश इन दोनों कवियोंकी तुलना करना ठीक न होगा। तौभी इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि जनमान्यताके संबंधसे गुणवान् लोगोंकी जो अत्यंत भिन्न २ दो अवस्था होती हैं उनके उक्त उभय कवि उ-त्कृष्ट उदाहरण हैं; और दोनोंभी विशेषतासंपन्न होनेके कारण चित्त में धारण करने योग्य हैं। अपनी सहज लीलाओंद्वारा बसहुए युवा पुरुषोंको देख सुंदर कुमारिकाओंका सलज्ज नीचे निहारना जैसे चि-त्तको मोहित करलेता है; वैसेही अर्भकोंका आत्मविषयक अनादर देख उनकी ओरको तत्कृत तिरस्कारका कटाक्षपात क्या मनोहर न होगा ?

भवभूतिके नामसे केवल 'मालतीमाधव' 'महावीरचरित' और 'उत्तररामचरित' यही तीन नाटक प्रसिद्ध हैं। यही तीन उसने लि-खे, वा जितने लिखे उनमेंसे यही तीन अवशिष्ट रहे; इसका इतः पर निश्चय होना प्रायः असंभवही है। पर इसमें तो अणुमात्र भी संदेह नहीं है कि यह तीनों उसीके लिखे हुए हैं। क्योंकि प्रथम तो उन सब-में उसका नाम पाया जाता है और दूसरे पीछे अभी कही चुके हैं कि

उन सबमें कुछ न कुछ श्लोकादि एकसे उपलब्ध होते हैं। यहांपर यह बात भी सहजही उत्पन्न हो सकती है कि भवभूतिने कालिदास की नाईं काव्य भी लिखे हैं वा नहीं। पर इसका भी निर्णय करना प्राय: ऊपर कैसाही दु:साध्य है। तौ भी 'मालतीमाधव' नाटक के प्रारंभमें सूत्रधारके भाषणमें 'भवभूतिनामा कविर्निसर्गसौहृदेन भरतेषु वर्त्तमान:' (भवभूति नामका कवि जिसका कि हम नाटक लेखकोंसे निसर्गजात स्नेह पाया जाता है) यह जो प्रयुक्त किया गया है सो इसका यदि कुछ विशेष अभिप्राय हो तौ हमारे कविकी नाटकों की ओर प्राकृतिक प्रवृत्ति थी ऐसा माना जाकर उक्त बातका अंशत: निबटेरा हो सकता है। वैसेही पहिले तो उसके नाटकोंकी सर्वथा अवज्ञाही हुई पर आगे कुछ कालके अनंतर वेही सर्वोपरि निश्चित किये गये, इससे भी स्यात यह अनुमान हो सकता है कि भवभूतिका चित्त स्वभावत: नाटकोंकी ओरही आकृष्ट था, और उसकी समस्त बुद्धि इसी ओर व्यय हुईसी दीख पड़ती है। अस्तु; तो अंतमें यह बात संशयात्मकही रहती है।

"मालतीमाधव" नाटकको अपर दोनों नाटकोंकी नाईं पुराणांतर्गत कथाका आधार नहीं है; उसकी आख्यायिका केवल कवि कल्पनाकी सृष्टि है। आगे उसका सारांश लिखा जाता है। भूरिवसु और देवरात नामके दो मित्र थे। गुरु गृहपर जब वे विद्या पढ़ते थे तब उनका यह विचार हुआ कि यदि अपनेको लड़का लड़की हुई तो अपनलोग उन परस्परका विवाह करेंगे। आगे कुछ कालके अनंतर भूरिवसु पद्मावतीके राजाका प्रधान मंत्री नियुक्त किया गया। और देवरातको भी विदर्भ देशके अधिपतिने अपने मुख्य मंत्रीका पद प्रदान किया। दैवात् उनकी मनोकामना भी पूर्ण हुई; अर्थात भूरिवसुके यहां मालती नामकी कन्याने जन्म ग्रहण किया और देवरातको

माधवनामका पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। यही दोनों वर्त्तमान नाटकके नायिका और नायक हैं। दोनोंके वयस्थ होने पर पूर्व्व संकल्पानुसार उन दोनोंका विवाह होनेवाला था; पर बीचहीमें एक अचिंत्य आपत्ति आ पड़ी। वह यह थी कि पद्मावतीके राजाका नंदन नामका एक प्यारा नर्मसचिव था; उसने राजाकेद्वारा मालतीकी सगाईकेलिये उसके बापसे बातचीत लगायी। इस बातचीतकी गंभीर चिंताके कारण भूरिवसु किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गया। पर ऐसे संकटके समयपर उसकी पूर्वकी गुरुबहिन कामंदकीने, कि जिसके सामने वे दोनों अपने अपत्योद्वाहकेलिये वचनबद्ध हुए थे, उनके उक्त कार्य्यका भार अपने सिर ले, बड़ी चतुराईसे उसे संपादित किया। उसने अपना अंग बचाकर अपनी दासीद्वारा मालतीमाधवमें प्रेम अंकुरित करा दिया। फिर एकदिन योंहीं मालतीकी भेंटके ओखेसे जा बातचीत करते करते वहां माधवकी चर्चा छेड़ प्रसंगवशात् उसके गुणोंका वर्णनकर उसका कुलवृत्तांत भी उसे सूचित कर दिया। उस वृत्तांत को सुन, माधवकी कुलीनताके विषयमें मालतीको जो संदेह था सो दूर होगया, और तद्विषयक उसका पूर्व्वानुराग सुदृढ़ हो गया। और दूसरे वर नन्दनके विषयमें द्वेष उत्पन्न हो उसे शंका हो गयी कि मेरे पिताकी दृष्टि केवल निजके स्वार्थ परही है। आगे उसे ऐसे कुछ ढंग दीख पड़ने लगे कि नंदनके साथ उसका विवाह हो माधवका प्रेम उसे जन्मभर हृदयशल्य होगा। माधवको भी उक्त आशाभंगके कारण सब जगत् शून्यसा भासित होनेलगा। इधर दोनों ओरसे विवाहकी सब तैयारी हुई; पर इतनेमें चामुंडोपासक कपालकुंडला, अपने गुरु अघोरघंटकी मंत्रसिद्धिकेलिये बलिप्रदानार्थ, मालतीको आकाश मार्गसे उठा ले गयी। वह अपने महलमें अटारीपर सोयी थी, और अब जागृत होनेपर उसने अपनेको बलिप्रदानार्थ सिद्ध की हुई पाया।

अपनी उक्त अवस्थाको सहसा देख वह बड़े जोरसे चिल्लाकर रोने लगी। माधव निराश एवं उदासीन हो मरघटामें फिर रहा था सो उसका वह रोना उसने सुना। उस करुणोत्पादक रुदनध्वनिको सुन माधव शीघ्रही चामुंडाके मंदिरमें जा पहुंचा, और उसने अघोरघंटका बध कर मालतीको प्राणदान दिया। इतनेमें उसके पिताके यहां भी उसके अदृष्ट होजानेकी बात विदित हो, लोग चारों ओर उसे ढूंढ़नेकेलिये दौड़ रहे थे। उसके उक्त मंदिरमें प्राप्त होनेपर फिर विवाहकी तैयारी होनेलगी। कामंदकीने माधव और उसके मित्र मकरंदको ग्राम देवताके मंदिरमें छिपाकर उन्हें कह रखा था कि मैं देवीके दर्शनोंकेलिये मालतीको वहां लाऊंगी। तदनुसार बड़े समारोहके साथ मालती वहां लायी गयी। मंदिरमें जा मालती अपनी प्रियसखी लवंगिकाके गले लग माधवके गुण और उपकारका स्मरणकर रोने लगी; और प्राण-बिसर्जनार्थ अनुमोदन देनेकेलिये उसकी प्रार्थनाकर वह उसके पाँओं-पर गिर पड़ी। इतनेमें लवंगिकाके इंगित करने पर माधव उसके स्था-नमें आखड़ा हो गया। मालतीके नेत्र साश्रुहोनेके कारण उसे किसी प्रकारका संदेह नहीं हुआ। अंतमें माधवको लवंगिकाही जान वह उसके गले लपट गयी, और उसने अपने मनकी सब बात उसे सुना दी, और मा-धवकी गुहीहुई इस बकुलमालाको मालतीके जीवनकी सहदानी जान अपने हियेसे लगारखनेकी प्रार्थनाकर उसके गलेमें उसने वह माला पहिरा दी। पर ऊपर देखतेही माधवको पहचान सभय लज्जित हो वह पीछे हट गयी। इतनेमें कामंदकी भीतर आयी और उसने उन दोनोंको गुप्तमार्गद्वारा अपने मठपर जानेकी अनुमति दी। वहांपर उसने अ-वलोकिता नामकी अपनी चेलीद्वारा विवाहकी सब सामग्री पूर्वहीसे सुसज्जित करा रखी थी। इधर मालतीके सब कपड़े और अलंकार म-करंदको पहिरा कामंदकी उसे भूरिवसुके यहां ले गयी, और किसी

को तनिकभी संदेह न होने देते उसका नंदनके साथ विवाह करा-दिया। मदयन्तिका नामक नंदनकी एक बहिन थी, वह प्रथम ही से मकरन्दपर आसक्त हो गयी थी, और जबसे उसने उसे व्याघ्रके आक्रमणसे बचाया था तबसे तो वह उसके प्रेमकी भिखारिन बन गयी थी। उसकी और मकरन्दकी भेंटभी इसी प्रसंगपर उसने बड़ी दक्षतासे करा दी। अनंतर पूर्वसंकेतानुसार वे दोनों और लवंगिका तथा कामंदकीकी दूसरी चेली बुद्धिरक्षिता ऐसे यह चारो जने, आधीरातको जब वहां चारों ओर सन्नाटा छा गया, गुप्तभावसे मठकी ओर चले गये। पर मार्गमें नगररक्षकोंने उनके जानेमें बाधा उपस्थित की; तब मकरन्दने उन तीनों स्त्रियोंको माधवके किंकर कलहंसके साथ माधवके निकट भेज दिया और आप अकेला उनसे लड़ता रहा। आगे माधवने जब वह समाचार सुना तत्क्षण वह भी अपने मित्रकी सहायताके लिये आ गया। उन दोनोंने नगररक्षक अधिक होनेपरभी उन्हें पराजित किया। उनके उस पराक्रमको देख राजाने उन्हें बहु-मानपूर्वक बोलाया, और उनका सब वृत्तान्त सुन, उनकी इच्छानुसार सब कार्य करना स्वीकृत किया। इस प्रकारसे राजसत्कार प्राप्तकर वे दोनों मित्र कामन्दकीके मठपर गये—पर वहां जा उन लोगोंने मालतीको न पाया। क्योंकि लवंगिकादि उसकी सखियोंको उस-से किंचित् दूर देख कपालकुण्डला उसे अचानचक उठा ले गयी थी; और माधवसे बदलालेनेके अभिप्रायसे वह उसका बध करनेकोही थी कि उतनेमें, कामन्दकीकी एक पुरानी चेली सौदामिनीने, कि जो उसी श्रीपर्वतपर तप कर रही थी, उसके प्राणोंकी रक्षा की। इधर माधव उसके विरहदुखसे कातर हो अपने मित्रको साथ ले उसके शोधार्थ बनोबन भ्रमण करनेलगा। फिरते फिरते विरहव्याकुल हो वह मूर्च्छित हो गया, मित्रकी उक्त दुखद अवस्थाको देख एक

पर्वतकी चोटीपरसे कूदकर प्राणविसर्जन करनेके लिये मकरंद प्रस्तुत हुआही था कि इतनेमें सौदामिनी वहां योगबलद्वारा प्रादुर्भूत हुई और मालतीके जीवित रहनेकी पहिचान जो बकुलपुष्पमाला थी उसे दिखाकर उसने उसकी सांत्वना की; इतने अवसरमें शीतल वायुके स्पर्शसे माधवकी मूर्च्छाभी टूट गयी, मूर्च्छाके टूटतेही उन्माद अवस्थाके कारण कृतांजलि हो वह वायुकी प्रार्थना करनेलगा। सौदामिनीने यह अवसर उचित जान वह बकुलपुष्पमाला उसकी अंजलीमें छोड़ दी। माधवने उसे तुरंतही पहिचान लिया, और तद्वारा उसे धैर्य प्राप्त हुआ। आगे सौदामिनीने प्रगट होकर उन दोनों को मालतीके समाचार सुनाये। अंतमें कामंदकी, भूरिवसु और लवंगिकादि मालतीकी सखियां, मालतीकी कहीं टोह न लगनेके कारण नितांत दुखित हो गयी थीं, उनकोभी सौदामिनीने आश्वासन दिया और मालतीकी भेंट करायी। तदनंतर आनंदमग्न हो सब लोगोंने बधूवरोंका विवाहोत्सव मनाया।

यही इस नाटकका संविधानक अर्थात् कहानी है। है तो यह बहुत लंबी चौड़ी पर साथही सरलभी है। बहुत घुमाने फिरानेसे जैसे किसी विषयको जटिलता प्राप्त हो जाती है सो बात इसकी नहीं है। इसकी घटना ऐसी चमत्कृतिजनक एवं चित्रविचित्र होने परभी इसके कथासूत्रमें यत् किंचित् ऊनता नहीं देखपड़ती। आधार स्वरूप कुछ न होनेपरभी भवभूतिने ऐसी रोचक कथा रची, इससे बोध होता है कि उसकी कल्पनाशक्ति बहुत प्रचंड थी। इसके सिवाय कापालिकपंथानुयायी दो पात्रोंकी नाटकमें योजनाकर उसका मेल आख्यायिकासे बहुतही उत्तमतया मिलाया है। ये सब बातें उसकी चतुरताका पूर्णरूपसे परिचय देती हैं। पात्रोंके भिन्न२ स्वभावोंकी विचित्रता स्पष्टरूपसे प्रदर्शित करनेकी रीति संस्कृत नाटकोंमेंही नहीं सुतरां संस्कृत क-

वितामात्रमें कम पायी जाती है; और तो क्या पर नाटकोंमें 'वेणीसंहार' और काव्योंमें 'महाभारत' के अतिरिक्त उक्त गुण किसी काव्यमें कहींभी पूर्णरूपसे दृष्टिपथमें नहीं आता ऐसा कहना स्यात अनुचित साहस न कहा जायगा। वर्त्तमान नाटकमेंभी वह गुण वैसा कुछ विशेष नहीं है; पर तौभी प्रत्येक पात्रमें उसकी भिन्न २ अवस्थानुसार जो जो गुण रहने चाहिये वे उत्कृष्टतापूर्व्वक प्रदर्शित किये गये हैं। माधव और मकरंदकी शूरता और परस्परका स्नेह, मालतीके स्वभावकी गंभीरता एवं कुलाभिमान, लवंगिका, बुद्धिरक्षिता और अवलोकिताकी प्रवचनपटुता, कामंदकीकी प्रौढ़ता और चतुराई; अघोरघंट और कपालकुंडलाकी निठुरता; प्रभृति सब गुण इसमें पूर्णरूपसे पाये जाते हैं। इसका प्रधान रस प्राय: शृंगार जान पड़ता है; तौभी अन्य नाटकोंमें वह जितना स्पष्ट और उद्दाम पाया जाता है उतना इसमें नहीं पाया जाता। इसमें वह जिस ढंगका पाया जाता है वह बड़ा गंभीर एवं प्रौढ़ है। इसके उदाहरण स्वरूपमें आगे एक दो बातें लिखी जाती हैं। प्रथम अंकांतर्गत मदनोद्यानमें मालतीके दृष्टिपथमें आने के कारण माधवका कामार्त्त होना और उसका समस्त वृत्तांत मकरंद से कथन करना; आगे छठे अंकमें मालतीका करुणाप्लावित हो लवंगिकाकी भ्रांतिसे माधवके गले लपटना और अनन्तर उसे देख लज्जित होना, वैसेही आठवेंके आदिका खूबीदार शृंगारका चुटकुला आदि आदि। पर इन सबकी अपेक्षा पांचवे अंकमें कविने अपनी चतुरताकी पराकाष्ठा प्रदर्शित की है; इसमें भयानक, अद्भुत, बीर और करुणादि भिन्नभिन्न रस अवश्य एकत्रित हुए हैं। पर उनमें शृंगारका जो अंश है वह उदात्तरूप एवं अत्यन्त शुद्ध है। इसमें अणुमात्रभी संदेह नहीं है कि भिन्न भिन्न रसोंकी ऐसी एकात्मता बहुतही थोड़े स्थानोंपर मिल सकेगी। मालतीका विवाह जब

नंदनके साथ निश्चित हुआ तब माधव निराश हो गया, उस समयकी उसके मनकी अवस्था, और वैसेही कपालकुण्डलाके मालतीको उठा ले जानेपर विरहके कारण उसे जो असह्य दुःख हुआ आदि प्रसंगोंका वर्णन अत्यन्त अनूठी उक्तिद्वारा उत्कृष्टतया किया गया है। इस नाटकमें बीभत्स रसकाभी एक सुप्रसिद्ध उदाहरण पाया जाता है। वह यह कि जब माधव सायंकालके समय हताश हो मर्घटामें फिर रहा था तब भूत प्रेतोंकी जो लीलाएं उसके दृष्टिपथमें आयीं, उनका तत्कृत वर्णन है। कहनेका अभिप्राय यह है कि कविने प्रायः सब रस इस ग्रन्थमें गठित किये हैं, और उनका परिपाक भी वैसाही परमोत्कृष्ट बना है। बीचबीचमें कहीं कहीं कुछ वर्णन आ गये हैं सो वह भी बहुत सुन्दर हैं, और विशेषत. नवमअंकमें सौदामिनीने आकाशमार्गसे यात्रा करती बार पद्मपुरनिकटवर्तिनी वनश्रीका जो वर्णन किया है वह बहुतही बहारका है। इस नाटकमें रचनाके सम्बन्धसे एक बात विशेषरूपसे ध्यानमें रखने योग्य है, क्योंकि वह अपर थोड़ेही ग्रन्थोंमें पायी जाती है। संस्कृतके काव्यनियमप्रधानग्रन्थोंमें यह नियम नहीं पाया जाता कि नाटकमें इतनेही अंक रहने चाहिये; अतः अंगरेजी नाटकोंकी नाईं सदा उसमें पांचही अंक नहीं रहते किन्तु कहीं कहीं वे दस पर्य्यन्त भी पाये जाते हैं। वही बात वर्त्तमान नाटकमें भी पायी जाती है; और उसके अपर दोनोंमें नाटकोंमें न रहकर इसमें रहनेका कारणभी स्पष्टही है। वह यह कि इसका संविधानक ( कथासूत्र ) बहुत लम्बा होने के कारण सात आठ अंकोंमें शेष होने योग्य न था। पर तौभी यह नाटक यदि खेला जाय तो जान पड़ता है कि उस के लिये और नाटकोंकी अपेक्षा अधिक समय न लगेगा, क्योंकि उसकी पृष्ठसंख्या अपर नाटकोंके इतनीही है।

'महावीरचरित' नाटक रामायणकी सर्वप्रसिद्ध कथाके आधारसे रचा गया है। तौभी उसकी आख्यायिकाकी अपेक्षा उसका संविधानक बहुतही निराले ढंगसे बांधा गया है; एतावता वह आगे संक्षिप्तरूपसे लिखा जाता है। विश्वामित्र दशरथ राजाके यहां जा यज्ञविघ्ननिवारणार्थ राम लक्ष्मणको अपने आश्रमपर ले आये। यज्ञोत्सव देखनेके लिये जनक राजाभी निमन्त्रित किये गये थे, पर उन्हें अवकाश न मिलनेके कारण उनने अपने भाई कुशध्वज और कन्या सीता एवम् उर्म्मिलाको वहां भेज दिया था। इस प्रकारसे आदिमें इन दोनों राजकुमार और राजकुमारियोंकी भेंट हुई। इतनेमें रावणका भेजाहुआ एक राक्षस सीताकी मंगनीके अर्थ कुशध्वज और विश्वामित्रके निकट आया। उसकी स्वागत पूंछ उनलोगोंने उसे वहां बैठने को कहा ही था कि उतनेमें ताड़काका भीषण शब्द श्रवणगत होने लगा। तब विश्वामित्रकी आज्ञानुसार श्रीरामने तत्क्षण उसका बध किया। तदनन्तर कुशध्वजकी आज्ञासे शिवजीका धनुष वहां लाया गया श्रीरामचन्द्रजीके उसे तोड़नेपर उन दोनों लड़कियोंका यथाक्रम श्रीराम लक्ष्मणको दिया जाना निश्चित हुआ। इस सब घटनाको देख राक्षसनाथ रावणका भेजाहुआ दूत भयचकित और निराश हो लंकाको लौट गया और वहां पहुंचनेपर उसने वहांका समस्त वृत्तान्त रावणके पितामह एवम् अमात्य माल्यवान्को कह सुनाया। उसके सुनतेही वह गम्भीर चिन्तामें मग्न हो गया; और तबसे रामका घात करनेके लिये वह नानाभांतिके उपाय और प्रयत्न करने लगा। प्रथम वह महेन्द्रद्वीपको गया और वहां उसने शिवकोदण्डका सब वृत्तान्त परशुरामको सुनाया, और रामसे उसका बदला लेनेके लिये उन्हें उत्तेजना दी। परशुरामभी परम क्रुद्ध हो मिथिलानगरीको आये। उनके वहां आनेपर रामसे युद्ध न करनेके लिये

विश्वामित्र और वशिष्ठजीने उनकी बहुत प्रार्थना की, पर उनने अपना हठ छोड़ना न चाहा। यह देख राजा जनकके पुरोहित शतानंद बहुत कुपित हुए, और दोनोंका वादविवाद हो शतानंद परशुरामको शापोदकद्वारा भस्म करनेकोही थे कि इतनेमें राजा दशरथने उनकी रक्षा की। आगे स्वयं रामने युद्धकेलिये परशुरामको बोलाया और दोनोंका द्वंद्वयुद्ध होकर परशुराम पराजित हुए। इस प्रकारसे माल्यवान् का पहिला मंसूबा जब व्यर्थ हो गया तब उसने दूसरा मंसूबा फिर बांधा। वह इस प्रकारसे कि शूर्पणखाको मंथराके शरीरमें प्रविष्ट करा तद्द्वारा रामको बनवास करानेके लिये कैकेयीकी बुद्धि फेर दी; और विराध, खर दूषणप्रभृतिको रामका नाश करनेकी आज्ञा प्रदानकर कपिराज बालीको अनुकूलकर उसेभी वही बात जता दी। इधर परशुरामजीने शस्त्रसंन्यास किया और दंडकारण्यनिवासी मुनिजनोंकी रक्षाका भार रामपर समर्पितकर, आप तप करनेको चलेगये। रामने भी उसका परम हर्षके साथ स्वीकार किया, और उसके योगसे कैकेयीप्रदत्त बनवासका उन्हें अणुमात्रभी दुःख न हुआ। दंडकारण्यनिवासी खर दूषणादिके बधके वृत्तांत, और सीताहरणआदि जटायु और संपातिके संवादमें सूचित किये गये हैं। आगे सीतान्वेषणतत्पर राम लक्ष्मण अरण्यमें जब भ्रमण कर रहे थे तब बिभीषणकी भेजीहुई श्रमणा नामकी एक स्त्री उसका पत्र लेकर उन्हें मिली। इस पत्रमें बिभीषणने रामकी शरण चाही थी। रामने उसका स्वीकार किया और उससे जानकीके समचार पूछे, उसने उत्तरमें निवेदन किया कि सीताने एक वस्त्र नीचे डाल दिया था, उसे सुग्रीव, बिभीषण और हनुमानादिकोंने आपके स्नेहके कारण अपने पास रख छोड़ा है। इस बातके जानतेही वे दोनों किष्किंधानगरीकी ओरको गये। आगे राम और बालिका युद्ध हुआ, और बालिने अपने प्राणोत्क्रमणके समय सुग्रीव

और अंगदको राज्याधिकार दे अग्निसाक्षिक राम और सुकंठकी मित्रता करायी। इसके अनंतरकी लंकादहनादि घटनाएं नाटक सम्प्रदायानुसार कहीं पड़देके पीछेके और कहीं पात्रोंके संबादादिमें सूचित की गयी हैं; और घोरयुद्धका वर्णन इन्द्र और चित्ररथके परस्परालापके छलसे किया गया है। अन्तिम अर्थात् सातवें अंकमें पहिले लंका नितान्त शोकाकुल होकर आती है और अनन्तर अलका अर्थात् यक्षेश्वर कुबेरनगरीकी अधिष्ठात्री आकर उसकी सांत्वना करती है। अन्तमें पुष्पकविमानारूढ़ हो राम, सीता लक्ष्मण और सुग्रीव बिभीषणादि अयोध्याकी ओर प्रस्थित होते हैं; और मार्गमें राम भूतपूर्व भिन्न भिन्न घटनाओंका वृत्तान्त सीतासे कहते जाते हैं। रामके अयोध्या पहुंचने पर भरतभेंट हो उनका राज्याभिषेक हुआ है।

उक्त संविधानकद्वारा यह बात लक्षित होती है कि रामायण वर्त्तमान नाटकका आधार केवल नाममात्रको मानी जा सकती है, पर वास्तवमें उसकी समस्त रचना कवि कल्पितही है। रामायणकी कथा और वर्त्तमान संविधानकमें पहिला बड़ाभारी भेद यह है कि यद्यपि परशुराम तथा बालीसे रामका युद्ध और बनवासादि स्वतन्त्र घटनाएं हैं तथापि कविने यहांपर यह बात कल्पित की है कि उक्त घटनाएं माल्यवान्ने कपटपूर्वक करायीं। हमारे चतुर कविने ऐसा क्यों किया इसका कारण भी विवेकी पाठकोंको ज्ञात होही चुका होगा। वह यह है कि ऊपर कैसी बातें कितनीही अधिक हों तौ भी उनका पृथक् वर्णन काव्यमें निर्वाहित होसकता है। पर उनके परस्परसे असम्बद्ध होनेके कारण, और नाटकके मुख्य पर्यवसानकी ओर जैसे यहां रामरावणयुद्ध—उनकी गति बिलकुल न होने के कारण, वे नाटकमें अधूरी दीख पड़ती हैं; और इसके योगसे नाटकके प्रधान

गुण वस्त्वैकताका * भंग होता है। इसी प्रकारके और दूसरे हेरफेर भी जो कविने किये हैं वे सब युक्तियुक्त हैं। ताड़काको देख विश्वामित्र डर गये, रावण शिवधनुष्यकी प्रत्यञ्चा चढ़ाती बार उलटकर गिर पड़ा, परशुरामको क्रुद्ध देख दशरथ राजा भयभीत हुए, इत्यादि बातोंसे मनको प्रशस्तता नहीं जान पड़ती अतः कविने उनका लोप कर एक निरालीही रचना रची है। परशुरामका स्वभाव जैसा कुछ निर्दय एवं अत्युग्र प्रदर्शित किया जाता है ठीक वैसाही यहां नहीं प्रदर्शित किया गया है किंतु उसमें थोड़ीसी सौम्यता झलकायी गयी है। वैसेही बाली और सुग्रीवका बैर, उसमेंभी पहिले की उद्दण्डता, और उसके साथ रामका कपटव्यवहार आदि बातोंका इस नाटक में कहीं पता तक नहीं लगने पाता। सारांश नाटकप्रणेतृगणोंकी प्रथानुसार भवभूतिने संविधानकको चमत्कृतिजनक करने तथा पात्रोंकी उदात्तशीलता प्रदर्शित करनेके हेतु रामायणकी मूलकथाको अपनी आवश्यकतानुसार बहुत स्थानोंपर परिवर्तित किया है।

इस नाटकके नामके अनुसार इस में वीर रस ही प्रधान पाया जाता है; और आदिमें सभ्यापेक्षित गुणोंका वर्णन करताहुआ सूत्रधार भी वही बात कहता है।

महापुरुषसंरम्भो यत्र गम्भीरभीषणः।
प्रसन्नकर्कशा यत्र विपुलार्था च भारती॥
अप्राकृतेषु पात्रेषु यत्र वीरःस्थितो रसः।
भेदैःसूक्ष्मैरभिव्यक्तैःप्रत्याधारं विभज्यते॥

---

* (Unity of Action) नाटकके संविधानकमें जो कृत्य रहते हैं उन्हें नाटककी परिभाषामें 'वस्तु' कहते हैं; उसकी एकता अर्थात् समस्तअंगों का परस्पर का मेल।

"अभिनीत होनेवाले इस अगले नाटकमें महापुरुषोंकी गंभीर एवं भयावनी उग्रता प्रदर्शित की जानी चाहिये; आलाप स्पष्ट एवं उद्दाम रहने चाहिये, पात्रगण उच्च पदस्थित रहने चाहिये और उनमें बीर रस जागृत रहना चाहिये, वह इतना कि जिस पात्रको जितना आवश्यक और शोभाप्रद हो।"

उक्त प्रस्तावनानुसारही इसमें सब गुण पाये जाते हैं। कहीं कहीं थोड़ेसे स्थलोंपर मात्र शृंगार रस झलकता है। इसके सिवाय अपर कोई भी रस 'महावीर' चरितमें बहुधा नहीं पाया जाता कहना स्यात अयुक्तिसंगत न समझा जायगा।

इस नाटक के पात्रोंके स्वभावोंका यहांपर वर्णित होना आवश्यक नहीं है; क्योंकि वे सर्व्वप्रसिद्धही हैं। पुराण वा इतिहासप्रसिद्ध कथाके आधारसे नाटक लिखनेवालेको यह बात स्वयंसिद्धही मिलती है कि पाठक वा दर्शकोंके चित्तमें उन्हें जो वृत्तियां प्रादुर्भूत करानी पड़ती हैं वे पहिले से ही उनमें सिद्ध पायी जाती हैं। उमको केवल इतनीही बातकी ओर ध्यान देना पड़ता है कि संविधानक अप्रयोजक रीतिसे जोड़ा जाकर वा पात्रोंके संवाद अशोभाप्रद लिखे जाकर मूल कथाकी रसहानि न होने पावे। उसमें उक्त चतुराई होनेके कारण वह उस बात को सुधार भी सकता है; इस अंतिम वातको बर्त्तमान नाटकमें भवभूतिने कहां कहां और किस किस प्रकारसे सुधारा है सो अभी पीछे उल्लिखित होही चुका है। सारांश यह नाटक कबिकी इच्छानुसार उत्कृष्ट बन भी गयाहै अतः इसके एक भागको उत्तम और दूसरेको अनुत्तम कहना युक्तिसंगत नहीं देख पड़ता। तथापि थोड़ेसे स्थलोंका किंचित् सविशेष वर्णन आवश्यक जानपड़ता है। पांचवें अंकके आदमें जटायु और संपातिका प्रवेश; वैसेही अंतिम अंकमें राम सीतादि मंडली पुष्पक विमानमें बैठकर सूर्य्यमण्डलके सन्निधि गयी और भूतपूर्व

वृत्तांतस्मारक दंडकारण्यसे होतीहुई अयोध्याको लौट आयी, यह दोनों वर्णन भव्य एवं उदात्तर*सगर्भित हैं। छठे अंकमें सीताकेलिये उत्कंठित हो रावण आया है; फिर मंदोदरीको आतीहुयी देख उसने अपना मनस्ताप छिपाया, और तत्कथित सेतुबंधनके संवादका उपहास कर उसे आश्वसित किया। आगे उसके सैन्यपति महस्तने आकर रामके ससैन्य समुद्र पार आकर लंकापर आक्रमण करनेके समाचार उसे दो बार सुनाये पर उसने प्रमत्तताके कारण कुछ भी नहीं सुना, इत्यादि बातें बड़ी चतुराईसे लिखी गयी हैं। उनसे रावणका गर्व, संकट विषयक सोन्माद अनास्था, और अप्रासंगिक कामातुरता आदि खचितहुईसी स्पष्टरूपसे दृष्टिगत होती हैं।

भवभूतिका तीसरा नाटक 'उत्तर राम चरित' है। यह पिछले दोनोंकी अपेक्षा अधिक प्रसिद्ध है, और कोई कोई तो इसे सब संस्कृत नाटकोंमें उत्तम मानते हैं। कालिदासके विषयमें इस नाटकके संबंधसे जो आख्यायिका परंपरासे चली आती है, वह अभी उपर उल्लिखित होही चुकी है, तद्द्वारा भवभूतिकी संस्कृतज्ञ मंडलीमें जो मान मान्यता है सो स्पष्टरूपसे लक्षित होती है। यह नाटक पिछले 'महावीर चरित' के उत्तरार्द्धके रूपमें है। पिछलेमें रामायणकी कथा रामके राज्याभिषेक पर्य्यंत पायी जाती है, और इसमें वह बहुधा अंत पर्य्यंत वर्णित है, पर इसमें भी 'महावीर चरित' की नाईं मूलकी अपेक्षा बहुतेरे स्थानों पर हेरफेर किये गये हैं। वे निम्न लिखित संविधानकद्वारा सहजहीमें लक्षित हो सकते हैं।

रामके राज्यारूढ़ होनेके अनंतर ऋष्यशृंगने द्वादश वार्षिक सत्र

---

*संस्कृत वा भाषाके किसी प्राचीन वा अर्वाचीन रसग्रन्थ प्रणेता ने 'उदात्त, नाम का रस वर्णित नहीं कियाहै। 'उदात्त नामका रस माननेकी सम्मति केवल स्वर्गवासी पण्डित विष्णुकृष्ण चिपलूणकर शास्त्रीनेही प्रकाशितकीहै।

करना प्रारंभ किया। ऋष्यशृङ्ग रामकी बहिन शांताके पति थे। इनके आमंत्रित करने पर रामकी तीनों मा, वशिष्ठ, अरुंधती आदि राजकुल गुरु उनके यहां गये। मिथिलानरेश जनकजी राम और सीता की भेंटकेलिये आ अयोध्यामें कई दिनोंसे टिकेहुए थे, वे भी इसी अवसर पर मिथिलाको लौटगये। उनके वियोगके कारण जानकीको खिन्न देख उनके मनोरंजनार्थ रामने अपने समस्त भूतपूर्व वृत्तांतों का चित्रपट प्रस्तुत करानेकेलिये लक्ष्मणको आज्ञा दी। उसे लेकर लक्ष्मण आये, और उसके चित्र वे यथाक्रम दिखा रहे थे कि रामको उन उन घटनाओंके स्मरणद्वारा पूर्वानुभूत हर्ष, विरह और शोकादि मनोवृत्तियोंका एकबार पुनः अनुभव प्राप्त हुआ। उक्त चित्रपटको देखते देखते दंडकारण्यकी वार्त्तातक जब आपहुंचे, तब रामको जानकीके वियोगका स्मरण असह्य हो उनने लक्ष्मणको ठहरनेकेलिये कहा। उस चित्रित वनशोभाको देख, सीताका, गर्भवती होनेके कारण इस बातपर जी चला कि भागीरथीके पावन कूलस्थ वनमें रहना चाहिये। सीताकी उक्त इच्छा पूर्ण करनेकेहेतु रामने लक्ष्मणको रथ प्रस्तुत करनेकी आज्ञा दी। लक्ष्मणके उधर चले जानेपर सीता चित्रदर्शनसे परिश्रांत हो रामका हाथ उसीसे ले सोगयीं। इतनेमें दुर्मुख नामका राम का गुप्तवार्त्ताहर वहां आया। उसे रामने पूछा कि लोग हमारे विषय में क्या चर्चा करते हैं तब उसने सीता विषयक भयावना जनापवाद उनके कानमें कहा। उसके सुनतेही राम मूर्च्छित हो गये, पर शीघ्रही उनकी मूर्च्छा टूटनेपर निरुपाय होनेके कारण उनने सीताको बनमें छोड़ देनेकेलिये निश्चय किया। और इस हृदयदाही बिचारकी दुर्मुखद्वारा गुप्तभाव पूर्व्वक लक्ष्मणको सूचना दी। इसके अनंतर अगला बहुतसा वृत्तांत-अर्थात् स्वयं गंगाका कुश लव युवकको बाल्मीकिके आधीन कर देना, ब्रह्मासे वर पा आद्य कविका रामायण प्रणीत

करना; वशिष्ठ, अरुंधती, और रामकी माता आदिकोंका सत्रसमाप्ति के अनंतर बाल्मीकिके आश्रमपर आकर कुछ काललों ठहरना, रामका अश्वमेध प्रारंभ कर घोड़ेको छोड़ना और उसकी रक्षाके लिये लक्ष्मणके पुत्र चन्द्रकेतुको नियुक्त करना, ये सब बातें जनस्थान * निवासिनी वासंती नामक वनदेवी और बाल्मीकिआश्रमस्थित तपस्विनी आत्रेयीके परस्परके संलापमें सूचित की गयी हैं। आत्रेयीने अंतमें यहभी कहदिया कि इस पंचवटीमें शंबूक नामका एक शूद्र स्वधर्म विरुद्ध तपकर प्रजामात्रके अकाल मरणादि आपत्तियोंका कारण हो रहा है यह बात आकाशवाणीद्वारा जानकर उसे दंडित करनेके निमित्त राम इधर शीघ्रही आनेवाले हैं। उक्त कथनानुसार रामके वहां आ उसका बध करतेही वह अपने दिव्य शरीरको धारणकर प्रगट हुआ। आगे शंबूकसे बात चीत करनेपर रामको विदित हुआ कि यह दंडकारण्य है तब वे पूर्व वृत्तांतका स्मरण कर वहांकी शोभा देखने लगे। अनंतर अगस्ति मुनिके यहांसे संदेशा आनेपर उन ऋषिके दर्शनार्थ राम वहां गये वहां से लौटकर अयोध्याको जातीबार रामने अपने पुष्पक बिमानको उस दण्डकारण्यमें पुनः ठहराया, और विचारा कि पूर्वके स्थलोंका निरीक्षण कर सीताविरहके दुःखको किंचित् हलका करलें। परन्तु यह तो कुछ नहीं हुआ उलटे जनस्थानके दर्शनद्वारा उनके वियोगानलकी ज्वाला अधिकतर धधक उठी और उसके योगसे वे मूर्च्छित हो गये। इस भावी अनर्थको पूर्वहीमें जानकर उसके निवारणार्थ गङ्गाने उपाय भी सोच रखाथा। वह यह कि अपने प्रभावसे सीताको अदृष्ट रहनेकी शक्ति प्रदानकर तमसाको उसके निकट रहनेकी आज्ञा दे रक्खी थी। अतःराम के मूर्च्छापन्न होतेही सीता अदृश्य रूपसे उनके पास गयीं, उनके

* संप्रति जिसे 'नासिक' कहते हैं उसीका आसन्नवर्ती प्रदेश प्राचीन कालमें जनस्थान' के नामसे पुकारा जाता था।

हाथ का परिचित स्पर्श होतेही रामकी मूर्च्छा टूटगयी। पर नेत्र उघाड़कर देखनेपर निकट कोईभी दृष्टिगत नहीं हुआ तब नितांत खिन्न हो उनने विचार किया कि सीताके निदिध्यासके कारण मुझे यह योंही भ्रम हुआ। इतनेमें वनदेवी वासंती घबराई हुई रामके पास आयी, और कहने लगी कि सीताने पूर्वमें जिसे अपने हाथों पालपोसकर बड़ा किया उस अल्पवयस्क युवा हाथीपर एक विशालकाय हाथी आक्रमण कर रहा है। तब उसकी रक्षाके हेतु राम उधरको गये। पर वहां जाकर देखा तो उसे जय प्राप्त कर अपनी स्त्री के साथ जलबिहार करते पाया। इसी प्रकारसे अन्य पशु पक्षियोंको भी उनने पूर्व्व परिचित पाया, और वासंतीके भूतपूर्व्व अनेक घटनाओंका स्मरण दिलाने पर औत्सुक्यादि वृत्तियां उनके मनमें प्रादुर्भूत हुईं। बातचीतकरते करते सीताकी चर्चा छेड़ वासंतीने उसके परित्यागार्थ हृदयभेदक शब्दोंद्वारा रामका उपालंभ किया। सीताकी चिरवियोग, के कारण घोर अरण्यमें क्या अवस्था हुई होगी सो न विदित होनेके कारण रामका हृदय करुणाप्लावित हो गया, और दुःखसह्य होनेके कारण वे संज्ञाशून्य हो गये। तब फिर पहिलेकी नाईं सीताने उनके ललाट को अपने हाथसे स्पर्श कर उन्हें लब्धसंज्ञ किया। पर उन्हें वा वासंती को वह दृष्टिगत नहीं हुई। अन्तमें अश्वमेधका समय न चूकने पावे इस अभिप्रायसे राम विमानासीन हो अयोध्याकी ओर निकलगये। इसके आगेका स्थल बाल्मीकिका आश्रम मानागया है। वहां वशिष्ठादि मण्डली थी ही, और जनकजीभी मुनिके दर्शनार्थ आगये हैं। वे सब सीताकी हृदयविदारक भीषण अवस्थापर शोकप्रकाशित कररहे थे कि उतनेमें आश्रमके बटूगणोंमेंसे एक उनके निकट आया। उसने अपना नाम लव और अपने जेठे भाईका नाम कुश बतलाया। मातापिताके नाम पूछे जाने पर उसने विदित किया कि वे मुझे ज्ञात नहीं

हैं, हां इतना अलबत्ते मैं जानताहूं कि हम दोनों बाल्मीकि ऋषिके हैं। उनकी चाल चलन और मुखाकृतिको देख जनकजी और कौशल्याको विश्वाससा होगया कि इनमें राम और सीताके कुछ लक्षण पाये जाते हैं। इतनेमें उस लड़केके लंगोटिया मित्र दौड़कर उसके निकट आये, और उससे कहनेलगे कि अपने आश्रममें 'अश्व' नामका एक विलक्ष पशु आया है सो चल हम तुझे वह दिखलाते हैं ऐसा कहकर उसे उधर ले गये। आगे उसके उस अश्वको पकड़कर बांध रखनेके कारण अश्वरक्षकलोगोंने उसपर आक्रमण कियां। पर रामके दिव्यास्त्र उसे आजन्मतः प्राप्त होनेके कारण उसने अकेलेही सब सैन्यको पराजित किया, इस संवादको सुन कुमार चंद्रकेतु उससे युद्ध करनेके लिये आया। यह सब घटना रामके शंबूकको मार दंडकारण्यसे लौट आनेके पूर्व्वही हुई। फिर रामने वहां पहुंचतेही दोनोंको युद्ध बंदकरनेकी आज्ञा दे अपने समीप उपस्थित होनेकी आज्ञा दी। चन्द्रकेतुने लवकी बहुत प्रशंसा की, और रामायण कथाके यह प्रधान पुरुष हैं यह ज्ञात होते ही लवने भी रामको प्रणाम किया। आगे कुशभी वहां आया और अनेक कारण ऐसे उपस्थित हुए कि जिनके योगसे रामने अपने दोनों पुत्रोंको पहिचान लिया, अंतमें बाल्मीकि ऋषिकी आज्ञानुसार लक्ष्मणने गंगाके तटपर बड़ा भारी समाज एकत्र बैठ सके ऐसी रंगभूमि प्रस्तुत की और वहांपर उक्त कवि प्रणीत छोटासा नाटक अप्सराओंद्वारा अभिनीत किया गया। सब लोगोंके समीप इस नाटकके अभिनीत करानेमें उक्त मुनिका अभिप्राय यह था कि सीताको वनमें परित्यक्त करनेके पश्चात् जो जो घटनाएँ हुई सो सबपर विदित होजायँ। तदनुसार सीताने अपना शरीर गंगामें विसर्जित किया, उन्हें दो पुत्र हुए, अनंतर गंगा और पृथ्वीने उनकी रक्षाकर दोनों पुत्रोंको क्षात्र संस्कार करानेके लिये बाल्मीकिके आधीन किया, इत्यादि

समस्त घटनाएँ उक्त दृश्य काव्यद्वारा सब लोगोंको प्रत्यक्षसी करादी गयीं। अंतमें इस उपनाटककी सीताने पृथ्वीके गर्भमें स्थानप्राप्तिकी प्रार्थनाकी, और उसमें समागयी। अनंतर सब पड़देके भीतर गयीं। परंतु शीघ्रही सब प्रेक्षकोंके समीप सच्ची सीता, गंगा और पृथ्वी यह तीनों गंगासे निकलीं, उक्त प्रकारसे सबके सामने सीताकी शुद्धता प्रमाणित होजानेपर रामने पुनः उनका अंगीकार किया। और अंत में बाल्मीकि मुनिने सबको आशीर्वाद दिया है।

उक्त संविधानकमें प्रधानतः दो बातें कुछ हेरफेर कर लिखी गयी हैं। एक यह कि मूल कथामें यह बात वर्णित है कि लवकुशने राम लक्ष्मणका पराभव किया, पर यहांपर केवल लव और लक्ष्मणके पुत्र चंद्रकेतुका ही युद्ध वर्णित किया गया है। वैसेही दूसरी बात यह कि राम लक्ष्मण और सीताका अंत नितांत दुखके साथ हुआ है पर यहां वह उसके विपरीत प्रदर्शित किया गया है। प्रथम हेरफेर करनेका कारण स्पष्टही है कि नाटकके नायकादि प्रधानपात्रोंको लघुताके दोषसे बचानेके हेतु वह किया गया है; और दूसरा तो अत्यंतही आवश्यक था, क्योंकि दुःख परिणामी नाटकोंकी–जिन्हें अंग्रेज़ीमें 'ट्राजेडी, कहते हैं–प्रथा संस्कृतमें बिलकुलही नहीं है, और इस प्रकारसे नाटकका अंत न होना चाहिये ऐसी साहित्य शास्त्रकी स्पष्ट आज्ञा भी है। संविधानकके अपर अंगोंकी रचना भी ऐसी चतुराईसे की है कि उसकी सहायतासे कवि प्रधान पात्रोंके उदात्तगुण स्पष्टता पूर्व्वक प्रदर्शित कर सका है। सीता रामको निज प्राणोंसे भी अधिक प्यारी थीं तिसपर भी चित्रपटके दर्शनद्वारा भूतपूर्व्व घटनाओंका स्मरण होतेही उनका हृदय अत्यंत सार्द्र हो प्रेमनिमग्न होगया था पर तौ भी दुर्मुखद्वारा जनापवाद कर्णगत होतेही उसे उनने तत्क्षण बज्रकी नाईं कठोर करलिया, और वशिष्ठके संदेश तथा अपनी कठोर प्रतिज्ञाको

अनुसृत कर, गले लपटी हुई निद्रोन्मुख सीताको निपट निर्दयता पूर्व्वक अलगकर अत्यंत सद्गदित हो बिदा किया ! दूसरे और तीसरे अंकके प्रसंग भी ऐसेही हृदयभेदक हैं। तद्द्वारा हमारे कविने यह बात स्पष्टकर दिखलायी है कि महाशय पुरुषोंके अन्तष्करण समय विशेष पर ही नहीं किंतु एकही समयमें 'वज्रसे भी कठोर और कुसुमसे भी मृदु कैसे हो जाते हैं। शंबूकबधकी कथा हमारे कविको अवश्यही लिखना पड़ी क्योंकि बिना कारण राजकाज छोड़ दंडकारण्यमें आनेकेलिये रामको कोई निमित्तही न था। वह काम रामकी सदयताका जैसाही घोर विरोधी है वैसाही रंगस्थल पर उसका खेला जाना भी अप्रस्त जान पड़ता है, एतावता थोड़ेसेमें ही कविने उस कथाको शेषकर शंबूकको दिव्य पुरुषके रूपमें शीघ्रही रंगभूमि पर उपस्थित किया है। तीसरे अंकमें तो करुणारस मानो साक्षात् अवतीर्णही हुआ है। दंडकारण्यकी वनश्रीको देख रामका मन करुणार्द्र हो गया, और वह स्थान चिरकालके अनंतर पुनः आलोकपथमें आनेके कारण जो जो पदार्थ दृष्टिगत होता वह सबभूतपूर्व्व घटनाओंका स्मारक हो सीता बिरहके दुःखको अधिकतर जागृत करता। उसी समय सीताकी सखी वनदेवी वासंतीकी भेंट हो गई है। पर इस अंकके संविधानक्रमें कविने इससे भी अधिक चमत्कृतिजनक एक बात बड़ी चतुराईसे लिखी है। उसने इसके करुणा रसको विशेषरूपसे अनुकूलता प्रदान की है। वह सीताकी अदृश्यता है। घोर काननमें जिसकी अवस्थाका बोध न होनेके कारण रामके हृदयमें दुःखकी तरंगैं उठती हैं; स्वयं उसीके सामने उपस्थित होते उन्हें उसका ज्ञान न होना, और उसीका परिचित हस्तस्पर्श होनेके पश्चात् रामकी बातचीत सुन उन्हें उन्माद होनेका वासंतीको संदेह होना, और रामका भी उसे व्यर्थ भ्रम मानना; आदि बातें नितांत हृदयद्रावक हैं; इसके सिवाय यह बातें ऐसी हैं कि इनके योगसे सीता परित्याग

विषयक रामकी कठोरता अत्यंत विस्मृत हो जाती है। चौथे अंकके स्थलके लिये बाल्मीकि मुनिके आश्रमकी योजना अनेक कारणोंसे बहुतही समीचीन एवं समर्पक हुई है। राम और सीता दोनों बाल्यावस्थासे असामान्य गुणसंपन्न होनेपर भी उन्हें कदापि सुखका लेश मात्र न प्राप्त हुआ, और उनका अंत और भी भयावना हुआ, यह देख कौशल्या और जनकको पराकाष्ठाका खेद हुआ उसके योगसे उनकी चित्तवृत्ति उदास एवं विरक्त हो गयी, उस समयकी उनकी उक्तियोंका पाठक वा दर्शकोंके चित्तपर स्थलौचित्यकी सहायतासे विशेष संस्कार करानेकेलिये ऋषिके आश्रमको छोड़ योग्य स्थान दूसरा और कहां मिल सकता है ! वैसेही इस असार संसारके अनेकानेक दुःखोंको भोग, सशोक एवं चिंताव्यथित हो शेष दिनोंको काटनेकेहेतु एक ओर बैठा हुआ वृद्ध समुदाय, और आश्रमके दूसरे ओर अनाध्यायके कारण निश्चिंत हो स्वच्छंदतापूर्व्वक बालक्रीड़ामें निमग्नहुए वहांके बटुगणोंका समूह, ये दोनों बातें एकके उपरांत दूसरी उल्लिखित होनेके कारण परस्परको नितांत शोभामद हुई हैं। क्योंकि संसारकी उक्त दोनों अवस्थाएं परस्परसे नितांत विभिन्न होनेके कारण ऐसे स्थान पर उनका भेद अत्यन्त स्पष्ट रूपसे दृष्टिगत हो विशेष शोभाको प्राप्त होता है। आगे सीताके विषयमें निराशहुए जनक और कौशल्याने जब लवको देखा तो उन्हें यह शंका हुई कि स्यात यह सीताका पुत्र हो आदि वृत्तांत; लवके लंगोटिया मित्रोंका किया हुआ कौतूहलजनक घोड़ेका वर्णन, राजपुरुषोंके धमकानेपर अपर बटुगण और उस क्षत्रियकुलभूषणमें तत्क्षण दृग्गोचर होनेवाला अंतर, यह सब बातें बड़ी चतुराईसे लिखी जानेके कारण वे इस अंकको विशेष शोभामद हुई हैं। अस्तु, अगले तीन अंकोंका सविशेष वर्णन करनेकी कोई

आवश्यकता नहीं जान पड़ती, हमारे चतुर पाठकोंको उनके विषयमें तर्कना करने केलिये उक्त संविधानकही अलम् होगा।

'उत्तररामचरित' करुणरसप्रधान नाटक माना जाता है। पहिले अंकमें करुणरस कहीं संभोग शृंगार और कहीं विप्रलंभ शृंगारमें मिलाहुआ पाया जाताहै। दूसरेके अंकमें पुनः विप्रलंभ शृंगारमें मिल वहां उसका आरंभमात्र हुआसा देख पड़ता है। पर अगले अंकमें वह पूर्णरूपसे उपलब्ध होता है। चौथेमें जनक और कौशल्या, तथा दूसरेके आदिमें वासंतीके संभाषणमें शुद्ध करुणरस पाया जाता है। पांचवें और सातवेंके आदिमें उभय योद्धा कुमार होनेके कारण परस्परके संवादमें वीररस विशेष शोभाप्रद बोध होता है। अंतिम अर्थात् सातवें अंकके आदिमें करुण और अंतमें अद्भुतरस है। कहनेका अभिप्राय यह है कि इस नाटकमें कविने करुणारसको प्रधानता दे अन्य रसोंको प्रसंगानुरोधसे वा तदाश्रित वर्णित किया है। यहांलों इस नाटककी अंतर रचनाके विषयमें लिखा गया। पर जो कोई इसके पृष्ठ योंही उलटाकर देखेगा उसेभी हमारे कविके भिन्न भिन्न स्थानोंकी चमत्कारजनक प्रयोगविधिका ज्ञान सहजही में होजायगा। कहीं ऋषिका आश्रम, कहीं बनदेवताओंके रमणीक एवं भव्य बन, कहीं विद्याधरोंका दिव्य प्रदेश, कहीं सुरासुरादि सब भूतसृष्टिअधिष्ठित आश्चर्य्यसंपन्न रंगस्थल, कहीं समरांगण ऐसे नानाप्रकारके चित्रंविचित्र स्थानोंकी कल्पना कियेजानेके कारण प्रत्येक अंकका रस पाठकगण, और विशेषतः दर्शक लोगोंके चित्तमें विशेष आनंद उपजाता है। वर्त्तमान नाटकमें सृष्टिवर्णनको भी दूसरे और तीसरे अंकमें हमारे कवि ले आये हैं। उक्त उभय स्थानोंपर दंडकारण्यका जो वर्णन लिखा गया है वह अत्यंत सुन्दर है। उसी प्रकारसे और और ठौर परभी जहां कहीं लेखानुरोधसे वर्णन करना पड़ा है वहां वहांपर भी वह वैसाही परमोत्कृष्ट लिखते

बना है। इसके पात्रगण प्रायः वही हैं जो रामायणमें प्रसिद्ध हैं; और इस नाटकमें भी उनके उदात्तगुणको कविने समुचित संविधानक जोड़ कर अधिक व्यक्त किया है। सारांश अनेक उत्तम गुणोंके सम्मेलसे 'उत्तररामचरित' परम रमणीक हुआ है। उसकी यह रमणीकता ही प्रधान कारण है कि वह सहसा रसिकप्रिय हो आजपर्य्यंत अपर दोनोंकी अपेक्षा भूतपूर्व पंडितोंमें विशेष प्रसिद्ध है। और इस बात में तनिक भी संदेह नहीं है कि उसकी यह समुज्ज्वल ख्याति का-लगतिके साथ साथ संतत वृद्धिलाभ करते जायगी और भवभूतिका नाम दिगंतरमें सुप्रसिद्ध हो वह चिरस्थित रहेगा!

यहांलों भवभूतिके सब ग्रन्थोंके विषयमें अर्थात्-उसके तीनों ना-टकोंके विषयमें-आलोचना की गयी। अब उनमें स्थूलतया जो विशेष-ता देख पड़ती है उसका पहिले वर्णन कर तत्पश्चात् उसके कवित्व-गुणका समास वर्णन करेंगे। भवभूतिके नाटकोंमें संविधानकके संबं-धसे प्रथम तो यह विशेषता लक्षित होती है कि उसका विष्कंभक ब-हुत सरल रहता है। उसके प्रथम नांदी अर्थात् मंगलाचरणको ही न देखिये। अपर सब नाटकोंमें इसके संबंधसे यही बात पायी जाती है कि इसे पूर्णरूपसे सजानेकेलिये कोई बात उठा नहीं रखी जाती-अर्थात् शिखरिणी स्रग्धरादि दीर्घ वृत्तोंमेंसे किसी एकका प्रयोग कर अर्थ और पदोंकी रचना बड़ी चतुराई से की जाती है। किसी २ नाटकमें एक पद्यसे अभीष्ट सिद्ध न होने के कारण अधिक पद्य भी लिखेहुए पाये जाते हैं। इस बातके उदाहरण स्वरूपमें 'वेणीसंहार' का नामोल्लेख किया जासकता है; इस नाटकमें मंगलाचरण छः सात पद्योंमें शेष किया गया है। इसके योगसे प्रेक्षक जनोंके कुतूहल का विघात होताहै, एतावता 'काव्य प्रकाश' नामक सुप्रसिद्ध सा-हित्यग्रंथमें यह दूषित निश्चित किया गया है। पर भवभूतिके 'महावी-

रचरित' और 'उत्तररामचरित' इन दोनों नाटकोंके आदिकी नांदी अत्यंत सुबोध हैं और उनका छंद भी अनुष्टुप् है। अब यह बात सच है कि, 'मालती माधव' की नांदी तीन दीर्घ वृत्तोंमें शेष की गयी है और उसमें अर्थ भी चमत्कृतिजनक एवं प्रौढ़ लाया गया है; पर हम समझते हैं कि भवभूतिने प्रसङ्ग विशेषानुरोध वा नाटक खेलनेवाली मंडलीके अनुरोध से वैसा किया हो। अपर सब नाटकोंमें पहिले पात्रोंको रङ्गभूमिपर लानेके लिये कविगणोंकी यह युक्ति पायी जाती है कि सूत्रधार और नटी वा पारिपार्श्वकके संवादोंका प्रथमतः प्रवेश करनेवाले पात्रोंके साथ कुछ न कुछ संबंध जोड़ दियाजाता है। कई नाटकोंमें यह व्यवस्था प्रत्यक्ष नहीं रहती पर श्लिष्ट पदोंके प्रयोगद्वारा उसका आभासमात्र होनेकी तजवीज़ की हुई लक्षित होती है। पर भवभूतिके नाटकोंमें यह बात भी नहीं पायी जाती। विष्कंभक और प्रथमगर्भांक ये दोनों बिलकुल विलग रहते हैं। विष्कंभकमें सूत्रधार कविका वर्णन कर अगले संविधानकका दिग्दर्शन करता है, और पहिले आनेवाले पात्रोंकी प्रेक्षकोंको सूचना देता है। अनंतर पात्रगण आ खेलका प्रारंभ करते हैं। अपर नाटकोंमेंभी कविका वर्णन आदिमें ही किया हुआ पाया जाता है, पर इन दोनोंमें एक बड़ाभारी अंतर दृष्टिगत होता है। भवभूतिके नाटकोंका सूत्रधार अपनी बाह्यताकी अंतपर्य्यंत * रक्षा करता है; पर इस दूसरे नाटकमें वह बात नहीं

* यहां पर कोई कदाचित् यह आक्षेप करेंगे कि सूत्रधारके इस बाह्यताकी 'उत्तररामचरितमें' निष्क्रांतिपर्य्यंत रक्षा नहीं की गयी है; क्योंकि उसकी नटके साथ सीताके जनापवादके विषयमें बातचीत होने पर वे दोनों रामकी ओर चले गये हैं। पर किंचित् विचारांश करनेपरयह बात ध्यानमें आती है कि उस नाटकमें सूत्रधारकी सूत्रधारकता 'एषोऽहं कार्य्यवशादायोध्यिकस्तदानींतनश्च संवृत्तः' (देखिये मैं आजके अभिनयार्थ अयोध्यावासी एवं तत्कालीन बनाहूं) ऐसा कहते ही चली गयी; इसके अनंतरका उसका नटोंके साथका संवाद रंगस्थ अपर पात्रों

दीखपड़ती, क्योंकि वह उसे तुरंतही भूल जाता है, और प्रथमतः प्रविष्ट होनेवाले पात्रोंसे मैं परिचित हूं ऐसा प्रदर्शित करता है। नाटकप्रणयनप्रथानुसार यह बात बड़ी विलक्षण है; पर ऐसा अनुमान होता है कि इसे दोष मानकर इससे अपने नाटकोंको बचानेकेलिये हमारे कविने विष्कंभकको विशेष चमत्कृतिजनक करनेकेलिये अपनी चतुराई यत्किंचित् भी खर्च नहीं की। और इसके सिवाय दूसरी बात यह है कि उक्त विपरीतता यद्यपि यथार्थमें दोषरूप हैं तथापि बड़ेबड़े नामी कविगणोंने† भी अपने पाठक वा श्रोतागणोंके चित्तमें चमत्कार भासित करानेके हेतु उन्हें अपने काव्योंमें आश्रय प्रदान किया है, एतावता इस बातके कहनेमें कोई अनौचित्य नहीं बोध होता कि चाहिये वह उसका प्रयोग सुखेन करसक्ता है; पर जब एकही युक्ति अनेक व्यक्तियों द्वारा अनेक प्रकारसे प्रयुक्त होजाती है तब उसमें अणुमात्र भी रस नहीं रहता; और यदि श्लेष साधनार्थ यत्नकर भवभूति विष्कंभकको वैसा चमत्कारोत्पादक करही देता तौभी वह भूतपूर्व कविगणोंके अनुकरणकी नांई ही दीखपड़ता। हम यह समझते हैं कि इन्हीं दोनों कारणोंको विचार भवभूतिने अपने नाटकोंके विष्कंभककी ऐसी अकृत्रिम रचना की है; और यही आद्य प्रथा होगी ऐसा स्पष्ट बोध होता है। अंगरेज़ीके नाटकोंमें मंगलाचरण, विष्कंभकादिकी

---

कैसाही जानना चाहिये। नाटककी कथा प्रारंभ करनेका यह ढंग बहुतही बढ़िया है, सो प्रसंगवशात् अपने रसज्ञ पाठकोंको सूचित किये विना हमसे न रहागया।

† नाटकोंकी चर्चा करती बार सामान्यार्थबोधक 'कवि' शब्द व्यवहृत करनेका कारण यह है कि उक्त प्रकार अन्यदेशीय कवि होमर और मिलटनके महाकाव्यके आदिमें पाया जाता है। उक्त दोनों कवियोंने स्वानुकूलताके हेतु कवित्व देवताकी प्रार्थना करती बारही सहसा काव्यके कथानकका आरंभ करदिया है। ऐसा करनेमें यही खूबी है कि जैसे अनंत जलराशि समुद्रमें नदीमुखद्वारा प्रवेश होता है वैसे ही पाठकोंको हो उन्हें यह विस्मय हो कि हम मुख्य कथानकलों कैसे आपहुंचे।

प्रथा न होनेके कारण सहसा नाटक आरंभ किया जाता है और रङ्ग-भूमि पर आनेवाले पात्रोंके बोधार्थ एक हस्तपत्रके अतिरिक्त अपर-साधन ही नहीं रहता, उनके यहां यह प्रथा अलबत्ते पायी जाती है कि आदि और अंतमें श्रोतागणोंको संबोधन दे सूत्रधार संभाषण करता है; पर इन संभाषणों और संस्कृत नाटकके विष्कंभक और भरतवाक्योंमें ( चर्चरीमें ) बहुतही अंतर लक्षित होता है। नाट-काभिनयका आरंभ और अंत एक साथही किया जाय तो अच्छा नहीं दीख पड़ता, सो न दीखपड़े ; और श्रोतृगणोंके चित्त अगले नाटककी ओर संलग्न हों; वा नाटक शेष हो जानेपर बहुमानपूर्व्वक सधन्यवाद वे विसर्जित किये जायँ; इसी अभिप्रायसे अंगरेज़ नाटक-प्रणेतृगण उक्त भाषणोंको नाटकोंमें जोड़ देते हैं, यही कारण है कि उनके यह पुछल्ले उनसे विलग रहते हैं, और कभी कभी तो ऐसा भी होता है कि नाटकप्रणेता उन्हें किसी विख्यात कविसे भी लिखा लेते हैं। तात्पर्य्य विष्कंभक रचनाके विषयमें भवभूतिका अपर नाटक कर्त्ताओंकी अपेक्षा यद्यपि तृतीय पंथ दृष्टिगत होता है, तथापि यही बात निर्द्धारित होती है कि वास्तवमें उसीकी प्रथा यथार्थ और आद्य है। इसके सिवाय दूसरा एक यहभी विचार है कि जिस शिल्पीको निज शिल्पके विषयमें यह दृढ़ विश्वास है कि मेरे बनायेहुए मंदिर के जिस जिस भागको लोग देखेंगे उसकी ओर वे निहारतेही रहेंगे, वह द्वारपर वृत्तखंड बनानेकेलियेही अपनी आधेसे अधिक शिल्प-पटुता क्यों व्यय कर देगा ?

भवभूतिके नाटकोंके विषयमें ध्यानमें रखने योग्य दूसरी बात यह है कि वे तीनों परमोत्कृष्ट होनेपर भी एकसे नहीं हैं, तीनोंके रस भिन्न भिन्न हैं और तदनुसार उनकी रचना भी एक दूसरीसे निराली है। इसके सविशेष उल्लिखित करनेका कारण यही है कि यह बात अपर

नाटकरचयितागणोंके नाटकोंमेंसे किसीके नाटकमें दृग्गोचर नहीं होती। स्वयं कालिदासके विषयमें ही विचारांश कीजिये। कवि और नाटकप्रणेताओंके विसदृश गुण एकही व्यक्तिमें पूर्णरूपसे एकत्रित हुए हों ऐसा उदाहरण कालिदासके व्यतिरेक कदाचित् किसी भी देश वा कालमें उपलब्ध न होगा; तौभी उसके तीनों नाटकोंकी परस्परमें यदि तुलना की जाय तो यह बात एक सामान्य पाठकको भी ज्ञात हो जायगी कि पहिलेमें जो रंग ढंग है सो दूसरेमें नहीं है, और जो दूसरेमें है सो तीसरेमें नहीं है। इसके सिवाय रसके विषय आदिमें भी भवभूति के नाटक परस्परमें जैसे विभिन्न हैं वैसे वे नहीं हैं। दूसरा उदाहरण श्रीहर्षका लीजिये। इसका पहिला नाटक 'रत्नावली' संविधानक चातुर्य्य, पदलालित्य और श्लेषादि गुणोंके योगसे रमणीक होगया है; पर उसीका दूसरा नाटक 'नागानंद' वैसा उपयुक्त न होनेकेकारण सामान्य नाटकोंमें परिणत किया जाता है। उसकी इस अवस्थाका कारण यह है कि उसके कई स्थानों पर पहिले नाटकसे अत्यंत सदृशता पायी जाती है। इसी प्रकारसे और भी कवि उदाहृत किये जा सकते-पर अब ऐसा करना व्यर्थ है! अनंत कालके उदरमें लीन होजानेके कारण कहो वा दूसरे कारणके योगसे कहो, संस्कृत कवियों के ग्रंथोंका अनुसंधान किया जानेपर प्रायः यह बात पायी जाती है कि काव्यके योगसे जिनकी ख्याति चली आ रही है उनके नाम नाटकलेखकोंकी श्रेणीमें नहीं पाये जाते; और बहुतेरोंने यद्यपि अनेक उत्तम २ नाटक प्रणीत किये हैं तथापि उनके नामसे एक नाटक से अधिक ग्रंथही प्रसिद्ध नहीं है। भारवि, माघ, बाण * मयूर, पंडित-

---

*बाण कविके नामसे प्रसिद्ध 'पार्वती परिणय' नामका एक नाटक हमारे देखनेमें औरभी आया। यह नाटक उस भुवनविख्यात कविप्रणीत है वा किसी अन्यका लिखा हुआ इसका निश्चय करना कोई कठिन बात नहीं है। क्योंकि जो इस नाटक-

राजजगन्नाथ यह लोग पहिले प्रकारके हैं और दूसरे प्रकारमें शूद्रक( मृच्छकटिक ), विशाखदत्त ( मुद्राराक्षस ), नारायणभट्ट ( वेणीसंहार ), कृष्णमिश्र ( प्रबोधचंद्रोदय ), रामभद्र दीक्षित ( जानकीपरिणय ) आदि हैं । उक्त दोनों प्रकारके ग्रंथ आजपर्य्यंत जिनके प्रसिद्ध हैं ऐसे कवि कालिदासके अतिरिक्त केवल दोही जानपड़ते हैं । एक तो श्रीहर्ष कि जिसके नामसे पूर्वोक्त दो नाटकोंके सिवाय, अतिशयोक्तिरूप वर्णनादि दोष और मृदुतातिशयगुणसंयुक्त 'नैषध' नामक विख्यात काव्य प्रसिद्ध है; और दूसरा 'गीतगोविंद' और 'प्रसन्न राघव नाटक' का कर्त्ता जयदेव । सारांश उत्कृष्ट होकर परस्परमें अत्यंत विसदृश और एकसे अधिक ऐसे नाटक एकमात्र भवभूतिकेही पायेजाते हैं ।

उक्त विसदृशताविषयक उल्लेख जैसाही सामान्यतः नाटककी रचनाके संबंधसे कियाजाता है वैसाही वह उसकी प्रत्येक उक्तिके विषयमें भी प्रायः किया जा सकता है: अर्थात् एक स्थान पर जो विचार प्रदर्शित किया गया है वही आगे अन्य स्थान पर प्रदर्शित किया हुआ भवभूतिके नाटकमें बहुधा नहीं पाया जाता । कालिदासके काव्य जिसने किंचित् ध्यानपूर्वक संपूर्ण पढ़ेहोंगे उसके चित्तमें यह बात अवश्यही आगयी होगी कि उस कविके अनेक विचार अनेक ठौर पर बिलकुल एकसे वा थोड़े हेर फेरके साथ प्रदर्शित किये हुए उपलब्ध होतेहैं । उदाहरणार्थ अगले श्लोकः—

---

के एकही अंकको पढ़ेगा उसे ग्रंथकर्त्ताके साहस और अप्रयोजकताको देख बड़ा अचरज जानपड़ेगा। इस ग्रंथमेंसे बाण कविके नाम और कुमारसंभवसे चोराईहुई एक घटनाको ऋण करदेनेपर ग्रंथकर्ताकी मर्खता और साहसकी सीमामात्र शेष रह जाती है ।

प्रजागरात्खिलीभूतस्तस्याःस्वप्ने समागमः।
बाष्पस्तु न ददात्येनां द्रष्टुं चित्रगतामपि॥

शकुंतला ६

वही पुनः

हृदयमिषुभिः कामस्यांतःसशल्यमिदं ततः
कथमुपलभे निद्रां स्वप्ने समागमकारिणीम्।
नच सुवदनामालेख्येऽपि प्रियां समवाप्य तां
मम नयनयोरुद्बाष्पत्वं सखे न भविष्यति॥

विक्रमोर्वशी २

उक्त श्लोकके उत्तरार्द्धका आशय पुनः मेघदूतमें भी वर्णित किया है:—

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैःशिलाया
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्त्तुम्।
अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपिन सहते संगमं नौ कृतान्तः॥

उत्तरमेघ।

इस प्रकारके उदाहरण और भी दिये जा सकते हैं। अभिप्राय यह है कि उक्त कैसी अर्थकी एकता भवभूतिके ग्रंथोंमें नहीं पायी जाती; तो उसकी उक्तियां भिन्न २ एवं नूतन प्रकारकी पायी जाती हैं। इसके सिवाय उनके विषयमें यहां इस बातका उल्लेख अत्यन्त समुचित जान

पड़ता है कि भवभूतिके बिचार संतत निजके ही पाये जाते हैं अन्य काव्य ग्रंथोंका उन्हें यत्किंचित् भी आधार नहीं रहता। *

यहांलों भवभूतिके नाटकोंके विषयमें बाह्यतः और अपर कवियोंके संबंधसे आलोचना की गयी। अब उन्हींके विषयमें अर्थात् उनके गुणोंके विषयमें बिचार करते हैं। पीछे कालिदासकी कविता और उसकी पदरचनाके विषयमें लिखती बार यह लिख आये हैं कि उसके सामान्य गुण अत्यंत मधुरता और कोमलता हैं। इन गुणोंका साधन भवभूतिने भी–समय विशेषपर अर्थात् शृंगार और करुणा रसके विषयमें लिखती बार–किया है; पर इस कविके लिखनेकी शैली अपने ढंगकी कुछ विलक्षणही है। यह शैली भवभूतिके नाटकोंमें क्या गद्य और क्या पद्य सर्वत्र पायी जाती है। संवाद उदात्त एवं गंभीर वा सामान्य विनोदका ही क्यों न हो पर इस गुणकी ऊनता कहीं भी लक्षित नहीं होती। जहां जहां बीर रस लाया गया है वहां तो

---

* पीछे कालिदासके समानार्थक तीन श्लोक लिखे गये हैं, उन्हीं कैसा भवभूति का भी एक श्लोक नीचे लिखा जाता है:—

वारं वारं तिरयति दृशोरुद्गमं वाष्पपूर
स्तत्संकल्पोपहितजडिमस्तंभमभ्येति गात्रम्।
सद्यःस्विद्यन्नयमविरतोत्कंपलोलांगुलीकः
पाणिर्लेखाविधिषु नितरां वर्त्तते किं करोमि॥

मालतीमाधव १

इस श्लोकको उक्त श्लोकोंका आधार है वा नहीं इस बातका निश्चय करना असंभव है। संप्रति इतनाही सूचित करना अलम् होगा कि यह भलेही मान लिया जाय कि इस श्लोकको पिछले श्लोकका आधार है पर तौ भी हमें भरोसा है, कि जब कि उसी उक्तिको उक्त श्लोकमें इतनी स्पष्टताके साथ व्यक्तकर गुरुकी अपेक्षा शिष्यने अधिक प्रशंसा प्राप्त की है तब ऊपर मूलग्रंथ में भवभूतिके विषयमें जो उल्लेख किया गया है उसमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं उपस्थित हो सकती।

धीरोद्धता नमयतीव गतिर्धरित्रीम् *

इस श्लोकपादमें वर्णित कुशकी वीरताके अनुसारही शब्दों का बहावभी बहुतही अनुकूल है ! और उक्त चरणही भवभूतिकी पद रचनाका एक उदाहरण है।

भवभूतिने अपने नाटकोंमें भिन्न भिन्न प्रसंगोंपर भिन्न २ रसोंका परिपाक उतार दिया है। उनमेंसे प्रथम शृंगारके विषयमें विचार किया जाता है। यह रस उक्त तीनों नाटकोंमेंसे प्रधानतया 'मालती माधव' मेंही विशेष रूपसे पाया जाता है; और 'महावीरचरितमें' वह योंही कहीं कहीं झलकता है, और 'उत्तर रामचरितमें' वह शुद्धरूपसे नहीं पाया जाता किंतु करुणारसमिश्रित पाया जाता है। अतः हमारे कवि उसे कहांलों प्रतिपादित करसके हैं सो पूर्णतया देखनेकी यदि इच्छा हो तो उसे 'मालतीमाधव' में ही देखना चाहिये। पीछे इस नाटकके विषयमें लिखती बार हम जो लिख आये हैं उसकी हमारे सचेत पाठकों को बहुधा विस्मृति न हुई होगी; वही बात यहां किंचित् सविस्तर लिखते हैं। भवभूतिके नाटकोंमें शृंगारका जो ढंग पाया जाता है वह किसी नाटक वा काव्यमें प्रायः नहीं पाया जाता। अपने कालिदासादि कवियोंको कविचूड़ामणि मान योरोपके कई पंडितोंने उन्हें सहसा कीर्त्तिमंदिरके उच्चतम शिखरपर अटलरूपसे स्थित कर दिया है सो जिन अंगरेज ग्रंथ कर्त्ताओंको यह बात नहीं भाती वे सामान्यतः संस्कृत कविताको यह दोष लगाते हैं कि उसके शृंगारका उद्भव शुद्ध प्रेम रससे तादृश नहीं पाया जाता किंतु बहुतांशमें वह कामवासना सेही पाया जाता है। यह कथन हठवादियोंके मतानुसार अर्थात् अंशतः मात्र यथार्थहै। संस्कृत कविताका आद्य शुद्ध स्वरूप जब भ्रष्ट होने-लगा तबके बहुतेरे काव्योंमें और अब इधर जिनकी प्रवृत्ति विशेष

* इसकी (कुशकी) धीरों कैसी चाल मानों धरतीको नवाये दे रही है।

रूपसे पायी जाती वे वीभत्स भाणादि * अलबत्ते उक्त दोषसे दूषित हो सकते हैं।

पर इतने ही के कारण समस्त संस्कृत कविताको दूषित करना किस प्रकार युक्तिसंगत हो सकता है उसका विचार करना हम अपने विवेकी पाठकों परही समर्पित करते हैं! भला यदि यही एक बात होती कि उक्त दोष अकेली संस्कृत कवितामें ही पाया जाता है तौ भी कुछ कहना न था। पर क्या उक्त दोष ग्रीक और रोमन लोगोंकी कविता में नहीं पाया जाता?—अथवा इतने दूर जानेकी भी कोई आवश्यकता नहीं है; क्या यह कोई कह सकता है कि अंगरेजी भाषाका रससर्वस्व जिसमें एकत्रित किया गया है वह शेक्सपियर कविकी कविता उक्त दोष से सर्वथा मुक्त है? यदि यह बात ऐसीही होती, तौ कुटुंबके लोगों के—अर्थात् पुरुष स्त्री लड़के आदि सबके एकत्र पढ़नेके योग्य उस कविकी संक्षिप्त आवृत्ति अलग अलग क्यों निकलती हैं? अस्तु; संप्रति वर्त्तमान विषयके संबंधसे हमें इतनाही कहनाहै कि पूर्व्व देशीय अर्थात् फ़ारसी, संस्कृत इत्यादि भाषाओं के कवियोंके काव्य और निर्बंध रहित शृंगार बर्णनका परस्पर नित्य संबंध है यह समझ जो परंपरासे चली आयी है वह सर्वथा सत्यही नहीं है इस बातका जिसे पूर्णरूप से प्रत्यय लेना हो उसे उचित है कि वह हमारे भवभूतिके नाटकोंकी पर्यालोचना करे। उसके अवलोकनद्वारा तदंतर्गत शृंगार किस बहारका है, कैसा सुकोमल और प्रौढ़ है आदि बातें सहजही में लक्षित हो सकती हैं।

शृंगारके कुछ उदाहरण उद्धृत करनेके पूर्व उनके विषयमें पाठकों

---

* भाण नामका नाटकका एक भेद है। उसमें पात्र एकही रहता है। वही उस का नायक माना जाता है। यह नायक कुछ आत्मगत और कुछ अन्योंको संबोधन दे कहता है। 'वसंततिलक' 'मुकुंदानंद' प्रभति लोगोंमें विशेष प्रसिद्ध हैं।

को यहांपर एक बात सूचित करना अभीष्ट जान पड़ता है। वह यह है कि पीछे कालिदासके ग्रंथोंसे जैसे वे प्रथक्ता पूर्व्वक थोड़ेसे में उद्धृत करते बने वैसे यहां पर उनका लिखा जाना कई स्थानों पर असंभव बोध होता है। क्योंकि पिछले उदाहरण प्रायः काव्यके होनेके कारण पूर्वापर संदर्भजन्य स्वारस्य हानि हुए बिना वे अलग करते बन गये। पर नाटकोंकी रचना कृत्रिम एवं संविधानकप्रधान रहती है, अतः उसका कहीं का भी भाग प्रथक् किया जातेही वह विलग दीख पड़ने लगता है; और यदि वह अलगही किया जाय तो उसके थोड़ेसे अलग करने में काम नहीं चलता। जैसे सुवर्णका पत्र कितनाही लंबा क्यों न हो पर उसमेंसे यथेष्ट टुकड़ा अलगकर लिया जासकता है; पर वैसा टुकड़ा किसी परमोत्कृष्ट मूर्ति वा चित्रमेंसे प्रथक् नहीं किया जा सकता। एतावता भवभूति की भणितके रसका जिन्हें अनुभव लेना हो उन्हें समुचित है कि वे उसके तीनों नाटकोंके उत्कृष्ट स्थलोंको जो पीछे उल्लिखित होचुके हैं, ध्यानपूर्व्वक देखें-सारांश उन्हें उन नाटकोंको आद्योपांत विचारना चाहिये। पर ऐसा करनेको जिन्हें अवकाश नहीं है, वा जिन्हें अवसरतो प्राप्तहै पर ग्रंथोंके गुणोंकी यथावत् आलोचना करनेके योग्य जिनकी बुद्धिको रसास्वादनपटुता अद्यावधि प्राप्त नहीं हुई है उन पाठकोंकेलिये अगला संग्रह जैसे बनपड़े किया जाता है

मदनोद्यानमें प्रथमतः माधव मालती के दृष्टिपथमें आतेही उसकी शृंगार चेष्टाओंके योगसे उसकी ( माधवकी ) जो अवस्था हुई उसका वह स्वयं मकरंदके प्रति वर्णन करता है:

अत्रांतरे किमपि वाग्विभवाति वृत्त-
वैचित्र्यमुल्लसितविभ्रममुत्पलाक्ष्याः।
तद्भूरिसात्विकविकारमपास्तधैर्य्य-

माचार्य्यकं विजयि मान्मथमाविरासीत् ॥

ततश्च,

स्तिमितविकसितानामुल्लसद्भ्रूलतानां
मसृणमुकुलितानां प्रांतविस्तारभाजाम्।
प्रतिनयननिपाते किंचिदाकुंचितानां
विविधमहमभूवं पात्रमालोकितानाम् ॥

तैश्च,

अलसवलितमुग्धस्निग्धनिष्पंदमंदै-
रधिकविकसदंतर्विस्मयस्मेरतारैः।
हृदयमशरणं मे पक्ष्मलाक्ष्याःकटाक्षै
रपहृतमपविद्धं पीतमुन्मूलितञ्च ॥

मालती माधव १

वैसेही दूसरे दो प्रसंगोंका वर्णन—

सभ्रूविलासमन्थसोऽयमितीरयित्वा
सप्रत्यभिज्ञमिव मामवलोक्य तस्याः।
अन्योन्यभावचतुरेण सखीजनेन
मुक्तास्तदा स्मितसुधामधुराःकटाक्षाः ॥
यान्त्या मुहुर्वलितकंधरमाननं तत्
आवृत्तवृंतशतपत्रनिभं वहन्त्या।
दिग्धोऽमृतेनच विषेणच पक्ष्मलाक्ष्या

गाढं निखात इव मे हृदये कटाक्षः ॥

मालतीकी बनाई हुई माधव की प्रतिकृति कलहंसकने जब उसे दी तब मकरंदके अनुरोधवश उसने भी वहां मालतीकी तस्वीर निकाल दी, और तुरंतही एक श्लोक बनाकर उसके नीचे लिख दिया

जगति जयिनस्ते ते भावा नवेन्दुकलादयः
प्रकृतिमधुराः संत्येवान्ये मनो मदयन्ति ये।
मम तु यदियं याता लोके विलोचन चंद्रिका
नयनविषयं जन्मन्येकः स एव महोत्सवः॥

मालती माधव १

हम नहीं समझते कि, अपनी हृदय वल्लभाके चित्रफलक पर अत्यंत सरस पद एवं अर्थसंपन्न सुभाषित जिस रसिकको लिखना होगा उसे वह उक्तकी अपेक्षा उत्कृष्ट और कहीं उपलब्ध हो सकेगा!

मालतीके कामदेवायतनसे सपरिवार प्रस्थित होनेपर उसकी एक सखी ( लवंगिका ) पुष्प बिननेके व्याजसे माधवके निकट आयी, और उससे बकुलहार मांगने लगी, सो वृत्तांत माधव मकरंदसे कथन करता है—

माधवः-सखे। श्रूयताम्। अथतस्याः करेणुकारोहणसमय एव महतः सखीकदंबकादन्यतमा वारयोषिद्विलंब्य बालबकुल–कुसुमावचयक्रमेण नेदीयसी भूत्वा प्रणम्य कुसुमापीडव्याजेन मामेवमुक्त वती। "महाभाग सुश्लिष्ट गुण तया रमणीय एषवः सुमनसां सन्निवेशः कुतूहलिनीच नो भर्तृदारिका वर्त्तते तस्यामभिनवो विचित्रः कुसुमेषु व्यापारः। तद्भवतु कृतार्थता वैदग्ध्यस्य फलतु निर्माणरम-

णीयता विधातुः आसादयतु सरस एष भर्तृदारिकायां कंठावलंबनमहार्घ्यतामिति"। *

मकरंदः—अहो वैदग्ध्यम्!

लवंगिकाको संबोधन दे मकरंदने जो उक्त उक्ति प्रयुक्त की है उसी उक्तिका प्रयोग ऐसा कौन सहृदय पाठक है जो नाटककर्त्ता के विषयमें न करेगा!

उक्त समस्त संग्रह केवल प्रथम अंककेही हैं, और यह इस नाटकके शृंगारका आरंभमात्र है। पर यही जहां अत्यंत पूर्णताको पहुंचा है वहां इस कविकी शृंगार विषयक उक्त विशेषता स्पष्टरूपसे लक्षित होती है। यह अंक आठवांहै। इसके स्थल,समय और घटना बहुतही उत्तम प्रयुक्त की गयी हैं। स्थान बनप्रदेश, समय ऋतुराज बसंत मासकी मध्य-रात्रि, और उसी समय चंद्रका उदय; और घटना भी तदनुकूल—नायक, नायिका अथच एक सखी इन्हीं तीनोंका वहांपर विद्यमान होना। इसके सिवाय उस दिन उत्तरोत्तर जो चमत्कारजनक घटनाएं हुई-अर्थात् मदनोद्यानमें जो साक्षात्कार हुआ, बाघके छूटने और कपालकुंडल के मालतीके लेजानेकी भयावनी घटना, वैसेही दोनों अवसर पर प्रदर्शित कियाहुआ माधवका पराक्रम, ग्रामदेवीके देवा-लयमें कियेहुए विनोदका वृत्तांत—उस समयके शृंगारके उद्दीपनकी यह सब पूरी सामग्री होनेपर भी हमारे कविने अपनी सदातनकी प्र-था परित्यक्त नहीं की। शृंगारमें अत्यंत लीन न हो नायिकाको परम

* अवतरण चिह्नद्वारा जो वाक्य बद्ध किये गये हैं वे सब श्लिष्ट हैं अर्थात् बकुलहार और माधवके लिये उनके भिन्न २ अर्थ होसकते हैं। ऐसे द्व्यर्थी शब्द ऊपर स्थूला-क्षरोंद्वारा प्रदर्शित किये गये हैं। 'विधातुः' और 'सरसः' शब्दको भी श्लिष्ट माना है यह सबको विलक्षण जान पड़ेगा; पर संवादके बहावकी ओर किंचित् विशेष ध्यान देने से तत्क्षण ज्ञात होताहै कि उक्त वाक्य कलापमें श्लेषअंत पर्य्यंत है।

भूषणरूप जो शालीनता ( लज्जा ) सो इस चुरकुलमें परमोत्कृष्टतापूर्वक दिखलायी है, और इस नाटकमें उक्त रस यद्यपि इसी स्थानपर पूर्णताको प्राप्त हुआ हैं तथापि और नाटकोंमें वह जिसप्रकारका दीख पड़ताहै उससे यहांकी बात बहुतही भिन्न पायी जाती है। अस्तु; अंतमें उसके विषयमें हम अपने पाठकोंको इतनाही सूचित करना चाहते हैं कि उक्त संग्रह यहां स्थानसंकोचवश उद्धृत नहीं हो सकता अतः जिन्हें अपनी इच्छा तृप्त करना हो उन्हें उचित है कि वे मूलग्रन्थ वा उसके अनुवादका * अवलोकन करें।

पिछले सब संग्रह शुद्ध शृंगारके हैं। अब जहां वह रसांतरमिश्रित हुआ है वहांके कुछ उदाहरण नीचे लिखे जाते हैं।

इस नाटकका वर्णन करती बार पीछे यह बात लिखहीं आये हैं कि पांचवे अंकमें शृंगार उदात्तरूप होकर वीर करुणादि अपर रसोंसे संयुक्त हुआ है। अतः अगले पद्योंका विचार करनेकेहेतु पाठकोंको उस अंकके संविधानकका स्मरण करना परमावश्यक है।

माधवः—महाभागे! न भेतव्यम्।

मरण समये शंकां त्यक्त्वा प्रतापनिर्गल-
प्रकटितनिजस्नेहः सोऽयं सखा पुरएव ते।
सुतनु! विसृजोत्कंपं संप्रत्यसाविह पाप्मनः

---

* अवधनिवासी श्रीयुत लाला सीतारामजी बी. ए. ( उपनाम भूप ) कविने अपनी प्राचीन नाटकमणिमालामें भवभूतिके तीनों नाटकोंको हिंदीमें गुंफित किया है। केवल भाषाजाननेवाले काव्यरसामृतपानपटुलोग इसकेद्वारा भी भवभूतिकी सर्वांग सुंदर अनूठी मूल उक्तिका अनुमानद्वारा आनंदानुभव करसकते हैं ' उत्तर रामचारित को पंडित नंदलालजी दुबे बी. ए. ने भी अनुवादित किया है। इनके अनुवादमें यह विशेषता है कि संस्कृतके जिन छंदोंके श्लोक भाषामें उन्हीं छंदोंमें अनुवादित कियेगये हैं।

फलमनुभवत्युग्रं पापः प्रतीपविपाकिनः॥

मालती माधव ५

—(सलज्जम्)

त्वत्पाणिपंकजपरिग्रहपुण्यजन्मा
भूयासमित्यभिनिवेशकदर्थ्यमानः।
भ्राम्यन्नृमांसपणनाय परेतभूमा-
वाकर्ण्य भीरु! रुदितानि तवागतोऽस्मि॥

—दुरात्मन्! पाषण्ड! चांडाल!

असारं संसारं परिमुषितरत्नं त्रिभुवनं
निरालोकं लोकं मरणशरणं बांधवजनम्।
अदर्पं कंदर्पं जननयननिर्माणमफलं
जगज्जीर्णारण्यं कथमसि विधातुं व्यवसितः॥

चामुंडाको बलिप्रदान करनेकेलिये अघोर घंट जब मालती को प्रस्तुत कर रहाथा तब वह बड़े दीर्घस्वरसे चिल्लाती थी। वह आर्त्तनाद माधवको कर्णगत होतेही श्मशानमें तत्क्षण उसकी जो अवस्था होगयी सो

माधवः—(साकूतमाकर्ण्य)

नादस्तावद्विकलकुररीकूजितस्निग्धतारः
चित्ताकर्षी परिचित इव श्रोत्रसंवादमेति।
अंतर्भिन्नं भ्रमति हृदयं विह्वलत्यंगमंगं
देहस्तंभः स्खलति च गतिः कः प्रकारः किमेतत्॥

आगे उसके उस घोर प्राणसंकटको स्वयं देख और उसकी विलक्षण रक्षाका बिचार कर वह कहता है:—

माधवः—अहो नु खलुभोः। तदेतत्काकतालीयं नाम।

संप्रति हि

राहोश्चंद्रकलामिवाननचरीं दैवात्समासाद्य मे
दस्योरस्य कृपाणपातविषयादाच्छिन्दतःप्रेयसीम्।
आतंकाद्विकलंद्रुतं करुणया विक्षोभितं विस्मयात्
क्रोधेन ज्वलितं मुदा विकसितं चेतःकथं वर्त्तताम्॥

उस अचिन्त्य अवसरपर माधवके मनमें जो नाना प्रकारकी तरंगें सहसा उद्भूत हुईं उनका वर्णन उक्तश्लोकोंमें कैसा उत्कृष्ट किया गया है! ऐसी घटनाओंकी कल्पना कर उन्हें पाठक वा प्रेक्षकोंके समीप यथावत् उपस्थित करदेनेकेलिये ग्रन्थकर्त्ताको मानवीस्वभावका अर्थात् मनुष्यके हृदयस्थ विचारोंका पूर्णज्ञान अत्यावश्यक है। उसे भवभूतिने इस स्थानपर इतनी उत्तमताके साथ प्रदर्शित किया है कि इस नाटककी समालोचना लिखती बार बिलसन् साहबने लिखा है कि इस विषय में यह कवि कालिदाससे भी कहीं बढ़गया है।

निम्नलिखित पद्य करुणामिश्रित शृंगारका उदाहरण है—

निकामं क्षामांगी सरसकदलीगर्भसुभगा
कलाशेषा मूर्त्तिः शशिन इव नेत्रोत्सवकरी।
अवस्थामापन्ना मदनदहनोद्दाहविधुरा-
मियं नःकल्याणी रमयति मनः कंपयति च॥

मालतीमाधव २

मालतीका विवाह जब नन्दनके साथ निश्चित हो गया और माधवको उसके प्राप्तिकी अणुमात्र भी आशा नहीं रही तबकी उसकी दुःखोक्ति—

चिरादाशातन्तुस्त्रुटतु नलिनी सूत्रभिदुरो
महानाधिव्याधिर्निरवधिरिदानीम्प्रसरतु।
प्रतिष्ठामव्याजं व्रजतु मयि पारिप्लवधुरा
विधिः स्वास्थ्यं धत्तां भवतु कृतकृत्यश्च मदनः॥

अथवा।

समानप्रेमाणं जनमसुलभं प्रार्थितवतो
विधौ वामारम्भे मम समुचितैषा परिणतिः।
तथाप्यस्मिन्दानश्रवणसमयेऽस्याःप्रविगल-
त्प्रभं प्रातश्चन्द्रद्युति वदनमन्तर्दहति माम्॥

मालतीमाधव ४

विनोदप्रधान शृंगारका उदाहरण--

लवंगिका।

वयं तथा नाम यदात्थ किंवदा-
म्ययं त्वकस्माद्विकलःकथांतरे।
कदम्बगोलाकृतिमाश्रितः कथं
विशुद्धमुग्धः कुलकन्यकाजनः॥

मालतीमाधव ७

चित्रपटको देख भूतपूर्व्व वृत्तान्तोंका स्मरण हो आनेपर भिन्न भिन्न स्थानोंके पूर्व्वानुभूत सुखका राम वर्णन करते हैं--

अलसलुलितमुग्धान्यध्वसञ्जातखेदात्
अशिथिलपरिरम्भैर्दत्तसंवाहनानि ।
परिमृदितमृणालीदुर्बलान्यङ्गकानि ।
त्वमुरसि मम कृत्वा यत्र निद्रामवाप्ता ॥

उत्तररामचरित १

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगा-
दविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण ।
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो-
रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत् ॥ *

पुष्पकविमानारूढ़ हो अयोध्याको लौटती बार रामको सीताके प्रथम अभिज्ञान ( पहिंचान ) दायक उत्तरीयके मिलने पर उन्हें जो हर्ष हुआ उसका वे वर्णन करते हैं:—

दृशोः शरच्छीतकरप्रकाशः
कायेऽपि कर्पूरपरागपूरः ।
स्वान्तेऽपि सान्द्रामृतकुम्भसेक-
स्तदा यदासीत्किल दृष्टमात्रम् ॥

महावीरचरित ७

* इस श्लोक के विषयमें पण्डितप्रसिद्ध जो आख्यायिका है सो पीछे दूसरे पृष्ठ की टिप्पणी में उल्लिखित होही चुकी है ।

इतने संग्रह बस होंगे। उक्त पद्योंके मननद्वारा भवभूतिके शृंगारवर्णनका रूप पाठकोंके ध्यानमें आही गया होगा। अब इसी बातके आधारसे भवभूतिकी जीवनयात्राके विषयमें जो एक बात अनुमित होती है उसे यहां पर लिखकर इस रसके निरूपणको शेष करेंगे। संस्कृतके और कवियोंकी अपेक्षा भवभूतिके शृंगारवर्णनमें जो विशेषता दीख पड़ती है उसका कोई कारण अवश्य ही होगा। इसका प्रधान कारण कविका प्रकृतिजात मनोधर्म तो है ही पर जब कि मनुष्यका स्वभाव अन्तलों एकसा प्रायः नहीं रहता किन्तु संसारकी अनेकभांतिकी घटनाओंके अनुसार न्यूनाधिक होता जाता है ऐसी अवस्थामें उनका विचार करना परमावश्यक है। भवभूतिके वंशका वर्णन आदिमें दिया ही गया है उससे स्पष्ट बोध होता है कि वह लक्ष्मी कृपापात्र न था।

आगे उसकी कविताशक्ति प्रकटित हो चारोंओर कीर्त्ति विस्तृत हो भाग्योदय होता—अर्थात् प्राचीन राजालोगोंके सम्प्रदायानुसार कवित्व गुणपर मोहित हो वा केवल कीर्त्तिके प्रीत्यर्थ ही कोई राजा उसे अपने यहां टिकाकर उसकी मानमान्यता बढ़ाता पर अपने कविको जनकीर्त्ति व राजसत्कार इन दोनोंमेंसे एकभी प्राप्त नहीं हुआ सो ऊपर कथित होही चुका है। अथवा उसे उक्त दुखद अवस्था होनेका कारण वह स्वयं ही हुआ हो इसमेंभी यत्किञ्चित् शंका नहीं जानपड़ती। अब इधर मात्र इंग्लैण्ड फ्रान्स और अमेरिकादि ज्ञानसम्पन्न देशोंमें गुणवान् मनुष्यको किसीकी ठकुरसुहाती न करते गुणको विशेष शोभादेनेवाली निःस्पृहताका उपयोग लेनेका अवसर हाथ लगा है क्योंकि सर्व्व साधारणमें ज्ञानका अधिक फैलाव होनेके कारण गुणग्राही जनभी बहुत होगये हैं अतः ग्रन्थप्रणेताको उसकी योग्यतानुरूप उक्त लोगोंसे ही आश्रय मिल जाता है। पर ऐसी अवस्था

आजपर्य्यन्त किसीभी देशमें न थीं। यही कारण था कि जिस किसी को प्रसिद्ध होना होता वह कैसाही गुणी क्यों न हो पर विनालज्जाको तिलाञ्जलि दिये और आत्मश्लाघाकी शरण लिये वा अपने स्वामियोंके मनोधारणार्थ वाग्देवीको नर्त्तकीकी नाईं नचाये निजेष्ट लाभार्थ उसे उपायान्तर ही न था। सम्प्रति सारज्ञलोग अधिक होनेके कारण मत्सरादि दुर्गुणोंकी उपेक्षा हो गुणकी थोड़ी वहुत परीक्षा होही जाती है। एतावता गुणवान् लोगोंकी सहसा अवहेलना नहीं होने पाती पर पुराकालमें यह बातें कहीं कुछ न थीं। तबकी दुःखजनक अवस्थाका वर्णन महर्षि भर्तृहरिजीने आत्मानुभव से बहुत ही यथार्थ लिखा है:—

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताःप्रभवःस्मयदूषिताः।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमंगे सुभाषितम्॥

"गुण परीक्षक मत्सरी हो रहे हैं; राजालोग अभिमानके मारे मर रहे हैं; अपर लोगोंकी बातही क्या! उन्हें कुछ बोधही नहीं है; एतावता कवित्वशक्ति उदयको प्राप्त न हो भीतरके भीतरही लुप्त होजाती है।" अस्तु; कहने का अभिप्राय यह है कि उक्त प्रकारकी अनेक बाधाएं प्राचीन कालमें ग्रन्थकर्त्ताकी प्रसिद्धिके मार्गमें आ-ड़ीआती थीं; और जो लोग ठकुरसोहाती न करसकते थे, वा वैसा करने को जो नीचता एवं अधमता समझते थे, उन्हें निजकृपा पात्र बनानेकेहेतु उनके निकट जानेकेलिये लक्ष्मीको कोई मार्गही न मिलता था। अनुमानसे जाना जाता है कि भवभूतिकी भी यही अवस्था हुई होगी; क्यों कि उस समय संपूर्ण देश हिंदूराजाओंके अधिकारमेंही होनेके कारण भवभूति जैसे कविचूड़ामणिको भी अवकृत कर घर पूंछते आये हुए भाग्यकी कोई उपेक्षा न करता! पर

अपने कविके गंभीर एवं उदार मनको राजाश्रित हो विभवानुभव करनेकी अपेक्षा दरिद्रावस्थामेंही स्वतंत्र रहकर अपनी वाग्देवीको निष्कलंक रखना अधिकतर अभीष्ट होगा ऐसा बोध होता है। उसका यह सुदृढ़ निश्चय निंदकोंकी अवज्ञा वा अपने ग्रंथोंकी यथेष्ट ख्याति न होने के कारण आगे कदाचित् वे नष्ट होजायंगे इस भय से टुक भी नहीं हटा; आत्म कवित्वका उसे ऐसा दृढ़ विश्वास था, और उस में ऐसी विलक्षण मंदता थी कि अपने काल के लोगों की निंदासे हतोत्साह न हो उसने भावी कालपरही दृढ़ भरोसा रक्खा, और भविष्यत्में मत्कृति अभिनंदित होगी यह उसने भविष्य कथन किया; यह सब बातें परम आश्चर्य को उपजाती हैं, और साथही इनसे हमारे कवि के मनकी अथाह गंभीरता का अनुमान होसकता है! सारांश भवभूति को राजदर्बारका संपर्क कधी भी न होने के कारण उसके मनकी आद्यावस्था में कदापि अंतर नहीं पड़ा, और हम समझते हैं यही कारण है कि उसके शृगांरवर्णनमें ऐसी अपूर्व शुद्धता दृष्टिगत होती है।

भवभूतिने अपने तीनों नाटकोंमें वीर रसको पूर्णरूपसे लिखा है। और 'महावीरचरित, में तो वह प्रधान ही है। शेष दोनोंमें वह कौन कौन से प्रसंगोंपर लाया गया है सोभी पीछे उनके संविधानकोंमें वर्णित होही चुका है। नीचे इस रसके उत्कृष्ट उदाहरण और भी लिखे जाते हैं:—

जामदग्न्यः—अहो दुरात्मनः क्षत्रियबटोरनात्मज्ञता!

न त्रस्तं यदि नाम भूतकरुणासंतानशांतात्मन-
स्तेन व्यारुजता धनुर्भगवतो देवाद्भवानीपतेः।
तत्पुत्रस्तु मदांधतारकवधाद्विश्वस्य दत्तोत्सवः
स्कंदःस्कंदइव प्रियोऽहमथवा शिष्यः कथं न श्रुतः॥

एष मे प्रशमस्य कर्कशः परिणामः॥

यत्क्षत्रियेष्वपि पुनः स्थितमाधिपत्यं
तैरेव संप्रति धृतानि पुनर्धनूंषि।
उन्माद्यतां भुजबलेन मयाऽपि तेषा-
मुच्छृंखलानि चरितानि पुनः श्रुतानि॥

महावीरचरित २

—आः क्षत्रियबटो अति नाम प्रगल्भसे।

प्रहर नमतु चापं प्राक्प्रहारप्रियोऽहं
मयि तु कृतनिघाते किं विदध्याःपरेण।
धिगिति विततवह्न्युद्गारभास्वत्कुठार-
प्रविघटितकठोरस्कंधबंधः कबंधः॥
—एतस्य राघवशिशोः कृतचापलस्य
लूत्वा शिरो मयि वनाय पुनः प्रयाते।
स्वस्थाश्चिराय रघवो जनकाश्च सन्तु
माभूत्पुनर्बत कथंचिदति प्रसंगः॥

महावीरचरित ३

"महाबीरचरित" में आदिसे अंतलों श्रीमद्रामचंद्रजीके पराक्रमकाही वर्णन प्रधान होनेके कारण वह प्रायः वीररसमयही हो गया है। अतः उससे जितने श्लोक उद्धृत कियेजायँ उतने थोड़ेही हैं। अब इस वीररसको विशेष शोभादेनेवाला जो एक दूसरा गुण भवभूतिके नाटकांतर्गत संवादोंमें कहीं कहीं पायाजाता है उसका यहां

पर उल्लेख किया जाता है। वह यह कि निम्न लिखित वीरतोचित संवादोंमें उद्दंडता नाम मात्रको नहीं पायी जाती, बरन वे विनय और चातुर्य्ययुक्त पाये जाते हैं॥

बालिरामौ—( अन्योन्यमुद्दिश्य )

कामंत्वयासहश्लाघ्यो वीरगोष्ठीमहोत्सवः।
किंत्विदानीमतिक्रान्ते त्वय्यवीरावसुंधरा॥

महावीरचरित ५

वैसेही

चन्द्रकेतुः—भो भोः कुमार !

अत्यद्भुतादपि गुणातिशयात्प्रियोऽसि
तस्मात्सखा त्वमसि यन्मम तत्तवैव।
तत्किं निजे परिजने कदनं करोषि
नन्वेष दर्पनिकषस्तव चंद्रकेतुः॥

उत्तररामचरित ५

मालतीके अचिंत्य प्राणसंकटके समय माधव चामुंडाके मंदिरमें अचानचक जव जा पहुंचा तब वह अघोर घंटपर कृपाण उठाकर धिक्कारपूर्व्वक सक्रोध उसे कहता है॥

माधवः—रे रे पाप !

प्रणयिसखीसलीलपरिहासरसाधिगतै-
र्ललितशिरीषपुष्पहननैरपि ताम्यति यत्।
वपुषि वधाय तत्र तव शस्त्रमुपक्षिपतः

पततु शिरस्यकांडयमदण्ड इवैष भुजः ॥

मालती माधव ५

वैसेही और थोड़ासा आगे बढ़के,

——अयि भीरु !

धैर्य्यं निधेहि हृदये हतएष पापः
किंवा कदाचिदपि केनचिदन्वभावि।
सारंगसंगरविधाविभकुंभकूट-
कुट्टाकपाणिकुलिशस्य हरेः प्रमादः ॥

चंद्रकेतु और लवकी भेंट होनेपर परस्परमें वीरतापूरित वार्त्तालाप हुआ। उस समय लव असूयापूर्व्वक रामचन्द्रजीका उपहास करके कहता है:—

सिद्धं ह्येतद्वाचिवीर्य्यं द्विजानां
बाह्वोर्वीर्य्यं यत्तु तत्क्षत्रियाणाम्।
शस्त्रग्राही ब्राह्मणोजामदग्न्यः
तस्मिन् दान्ते का स्तुतिस्तस्य राज्ञः ॥

उत्तर रामचरित ५

वृद्धास्ते न विचारणीयचरितास्तिष्ठन्तु हुं वर्त्तते
सुंदस्त्रीदमनेऽप्यखण्डयशसो लोके महांतो हि ते।
यानि त्रीण्यकुतोभयान्यपि पदान्यासन् खरायोधने
यद्वा कौशलमिंद्रसूनुदमने तत्राप्यभिज्ञो जनः ॥

अब इसके आगे करुणारसके विषयमें आलोचना कीजाती है।

उक्त दोनोंके प्रधानस्थल यथाक्रम जैसे 'मालतीमाधव' और 'महावीरचरित' हैं, वैसेही इस रसका मुख्यस्थान 'उत्तररामचरित' है। भवभूतिका ऐसा कुछ अभिप्राय दीख पड़ता है कि आठ रसोंमेंसे मुख्य जो पहिले तीन हैं उनमेंसे प्रत्येककी छटा एकेक नाटक में प्रदर्शित की जावे। उनमेंसे पहिले दोके संग्रह ऊपर उद्धृत होही चुके हैं; उन्हें पढ़ हमारे रसिकपाठकोंको पूर्णतया ज्ञात होचुका होगा कि उस उस रसको पाठकोंके चित्तपर प्रतिबिम्बित करानेकी शक्ति हमारे कविमें कैसी विलक्षण थी। वैसेही वर्त्तमान इसकाभी परिपाक उतारनेमें वह कहांलों समर्थ हुआ है सोभी पाठकोंको भावी संग्रहद्वारा प्रत्यक्ष हो जायगा। परन्तु वैसा करनेके पूर्व्व पीछे कहीहुई एक बात पाठकोंको पुनः एकबार सूचित करना आवश्यक जानपड़ता है। वह यह कि नाटकके पद्यादि यदि अलग निकाले जायँ तौ उनका पूर्व्वापर सन्दर्भ टूट जानेके कारण बहुधा वे नीरस हो जाते हैं; अर्थात् सम्पूर्ण नाटक वा अङ्क पढ़नेसे तदन्तर्गत भाषणादिका रसानुभव जैसा पूर्ण और यथार्त्थ हो सकता है वैसा केवल उसीके पढ़नेसे कदापि नहीं हो सकता, तथापि जब कि यह निबन्ध एक प्रकारसे प्राक्कथन स्वरूप है—अर्थात् तत्तत् कविके ग्रन्थमें पाठकका प्रवेश हो उसका कुछभी मार्म्मिकज्ञान पाठकको होजाय यही इसका प्रधान अभिप्राय है–तौ पूर्व्वक्रमानुसार करुणारसकेभी कतिपय उदाहरण यहां लिखेजाने चाहिये। वे निःसन्देह अपूर्ण रहेंगे और तद्द्वारा पाठकोंको उक्त रसके स्वरूपका जो ज्ञान होगा सोभी वैसेही अंशतः मात्र होगा। अस्तु।

दुर्मुखके सीताविषयक जनापवाद रामके कानमें कहते ही वे बेसुधहो तुरन्त धरती पर गिरपड़े। फिर जब सचेतहुए तब मनोमन कहते हैं:–

रामः—( आश्वस्य )

हा हा धिक् परगृहवासदूषणं यद्
वैदेह्याः प्रशमितमद्भुतैरुपायैः।
एतत्तत्पुनरपि दैवदुर्व्विपाका-
दालर्कं विषमिव सर्व्वतः प्रसृप्तम् ॥

इस मंदगतिछन्दका प्रयोग यहांकी घटनाको अत्यन्त अनुकूल बोध होता है। रामजीके चित्तपर जो सहसा आघात हुआ उसके योगसे उनका कण्ठ भर आया। क्योंकि उक्त उक्तिके श्रवणमात्रसे यह बोध होता है कि वह अत्यन्त कष्टपूर्व्वक व्यक्त की गयी है।

आगे निद्रादेवीकी गोदमें पड़ीहुई सीताजीको सम्बोधन दे रामचन्द्रजी कहते हैं:—

त्वया जगन्ति पुण्यानि त्वय्यपुण्याजनोक्तयः।
नाथवन्तस्त्वया लोकास्त्वमनाथा विपत्स्यसे ॥

अनन्तर उन्हें बनमें परित्यक्त करनेके कठोर निश्चयको स्थिरकर, उनने उस कार्य्यका भार दुर्मुखपर अर्पित किया, और मैं घातक अपने करस्पर्शसे देवीको क्यों अशुद्ध करूं ऐसा कह रामचन्द्रजीने सीताजीका शिर उठाकर अपना हाथ खींच लिया और बोले:—

अपूर्व्वकर्म्मचाण्डालमयि मुग्धे विमुञ्च माम्।
श्रिताऽसि चन्दनभ्रान्त्या दुर्विपाकं विषद्रुमम् ॥

तद्वत्।

विश्रम्भादुरसि निपत्य लब्धनिद्रा-
मुन्मुच्य प्रियगृहणीं गृहस्य शोभाम्।

आतङ्कस्फुरितकठोरगर्भगुर्वीं
क्रव्याद्भ्यो बलिमिव निर्घृणः क्षिपामि ॥

उत्तररामचरित १

प्रजाराधनके निमित्त रामचन्द्रजीने साहसप्रमुख सीताजीका भी परित्याग तत्क्षण कर तो सच दिया पर आगे वह बात सन्तत उनके चित्तमें खटकतीही रही। उनका विरह प्रथमसेही दुःसह था तिस परभी उनके साथ उन्होंने जो जो धोखेबाजी की उसके योगसे वह अत्यन्त तीव्र हो उनके हृदयमें भिदगया। रामचन्द्रजीकी निम्नोक्त उक्ति कैसी स्वभावसुलभ एवम् हृदयभेदक है सो पाठक स्वयं विचार लें।

रे हस्त दक्षिण मृतस्य शिशोर्द्विजस्य
जीवातवे विसृज शूद्रमुनौ कृपाणाम्।
रामस्य गात्रमसि दुर्वहगर्भखिन्न-
सीताविवासनपटोः करुणा कुतस्ते ॥

उत्तररामचरित २

जिस दंडकारण्यके रम्य प्रदेशोंमें अभी कुछ वर्षोंके पूर्व रामचंद्रजीने जनकनंदिनीके साथ आनन्दपूर्वक दिवस बिताये थे उन्हीं के पुनः प्रसंगवश दृष्टिपथमें आनेपर उनकी जो अवस्था हुई सो अगले पद्यमें कितनी उत्कृष्टताके साथ लक्षित की गयी है!

रामः—हंत परिहरंतमपि मामितः पंचवटीस्नेहो बलादपकर्षतीव।

यस्यान्ते दिवसास्तया सह मया नीता यथा स्वे गृहे
यत्संबंधिकथाभिरेव सततं दीर्घाभिरास्थीयते।

एकः संप्रति नाशितप्रियतमस्तामद्य रामः कथं
पापः पञ्चवटीं विलोकयतु वा गच्छत्वसंभाव्य वा ॥

———२.

यत्र द्रुमाअपि मृगा अपि बंधवो मे
यानि प्रियासहचरश्चिरमध्यवात्सम् ।
एतानि तानि बहुनिर्झरकंदराणि
गोदावरीपरिसरस्य गिरेस्तटानि ॥

———३

उक्त कथनानुसार रामचन्द्रजी दंडकारण्यके पूर्वपरिचित भिन्न २ स्थलोंका अवलोकनकरते फिर रहे थे कि वहांकी बनदेवी सीता की सखी बासंती उन्हें आ मिली। उसे सीता विवासनका संवाद ज्ञात हो चुका था। अतः उस बनसंबंधीय इधर उधर की बातें प्रथम होजाने पर उसने आंखोंमें पानी ला रामचन्द्रजीसे पूंछा 'महाराज कुँवर लक्ष्मण जी कुशल तो हैं न ?,परंतु रामचन्द्रजीका चित्त उन पूर्व्वपरिचित स्थानों के अवलोकनमें नितांत मग्न होगया था; अतः वासंतीसे बात चीत हो रही थी तौभी उसके उक्त प्रश्नको बिलकुल अनसुनासाकर वे मनो मन कहते हैं:—

करकमलवितीर्णैरंबुनीवारशष्पै-
स्तरुशकुनिकुरंगान् मैथिली यानपुष्यत् ।
भवति मम विकारस्तेषु दृष्टेषु कोऽपि
द्रवइव हृदयस्य प्रस्तरोद्भेदयोग्यः ॥

उत्तररामचरित ३

वासंतीने वही प्रश्न फिर किया। उसे सुनतेही उसका आशय + जानकर रामचन्द्रजी अतीव करुणार्द्र होगये, और विलाप करनेलगे। आगे रामजीने सीता सतीके साथ जो कठोरता की तदर्थ वासंती उनका उपालंभ करती है:—

त्वं जीवितं त्वमसि मे हृदयं द्वितीयं
त्वं कौमुदी नयनयोरमृतं त्वमंगे।
इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धां
तामेव शांतमथवा किमिहोत्तरेण॥
अयि कठोर यशः किल ते प्रियं
किमयशो ननु घोरमतः प्रियम्।
किमभवद्विपिने हरिणीदृशः
कथय नाथ कथं बत मन्यसे॥

उत्तररामचरित ३

पीछे कालिदासके विषयमें लिखती बार 'शकुन्तला' के चौथे अङ्कान्तर्गत करुणा और वत्सलरस चुहचुहाते हुए अतः प्राचीनकाल से रसिकप्रिय बनेहुए चार श्लोकोंका उल्लेख किया था; उन्हींकी समताके उक्त दो श्लोक हैं। इनके योगसे तीसरे अंकको 'उत्तररामचरित'

+ वास्तवमें वासंतीको अपनी प्रिय सहेली सीताके विषयमें पूंछताछ करनी चाहिये थी; पर उनकी बातही शेष होगयी ऐसा समझकर उसने लक्ष्मणजी के विषयमेंही प्रश्न किया। इस बातने रामचन्द्रजीके चित्तपर ऐसी गंभीर चोट की कि उन का कण्ठ करुणासे भरआया। इसके सिवाय दूसरी बात यह कि पूर्वका अत्यन्त स्नेहभाव होनेपर भी उसने अपरिचित की नांई बहुमानप्रमुख उन्हें 'महाराज, संबोधन किया!

नाटकको, भवभूतिके ग्रन्थोंको सुतरां संस्कृतभाषाको परम शोभा प्राप्त हुई है!

दुःख अत्यन्त असह्य होनेपर रामजीका हृदयोद्गार—

हा हा देवि स्फुटति हृदयं स्रंसते देहबन्धः
शून्यं मन्ये जगदविरतज्वालमंतर्ज्वलामि।
सीदन्नंधे तमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा
विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मंदभाग्यः करोमि॥

उत्तररामचरित ३

सीताजीका बनमें बध होगया ऐसा समझकर जनकराजा शोक करते हैं:—

जनकः—हा वत्से!

नूनं त्वया परिभवं तु नवश्च घोरं
तांचव्यथां प्रसवकालकृतामवाप्य।
क्रव्याद्गणेषु परितः परिवारयत्सु
संत्रस्तया शरणमित्यसकृत्स्मृतोऽस्मि॥

उत्तररामचरित ४

इतने संग्रह बहुधा अलम् होंगे। पर औरभी एक चमत्कृतिजनक है अतः वह यहांपर उद्धृत किया जाता है। जनकात्मजाके दुसह वि- रह का दुःख कुछ हलका हो इस अभिप्रायसे रामचंद्रजी भूतपूर्व वृत्तांतस्मारक अनेक स्थलोंका निरीक्षण कर रहे थे उसी समय वा-

संतीने पुराकालमें एक लताभवनमें जो घटना हुई थी उसका सानुनय निवेदन किया है:—

वासंती—देवदेव!

अस्मिन्नेव लतागृहे त्वमभवस्तन्मार्गदत्तेक्षणः
सा हंसैःस्थिरकौतुका चिरमभूद्गोदावरीरोधसि।
आयान्त्या परिदुर्मनायितमिव त्वां वीक्ष्य बद्धस्तया
कातर्यादरविंदकुड्मलनिभो मुग्धः प्रणामांजलिः॥

उक्त पद्यमें हमारे कविने कितनी उत्कृष्टता और उत्तमताके साथ उक्त घटना कल्पित की है! और समस्त जीवन यात्रामें अत्यंत मनोहर जो मुग्धावस्था सो उक्त दंपतीकी कैसे हृदयग्राही शब्दोंद्वारा वर्णित की है। *

भवभूतिने करुणरसके विषयमें पराकाष्ठा प्रदर्शित की है ऐसी प्राचीन कालसे उसकी कीर्ति चली आ रही है। हमारे पुराने पंडितों की मंडलीमें प्रसिद्ध २ संस्कृतके कवियोंके विषयमें एक न एक पद्य वा वाक्य सबके जिह्वाग्र पर पायाही जाताहै। भवभूतिके विषयमें भी निम्नोक्त पाया जाता है—

---

* ऐसेही एक नितांत हृद्य प्रसंगकी कल्पना कालिदासने 'शकुंतला' नाटकमें की है। उसका यहांपर उल्लेख किये विना हमारी लेखनी आगेको नहीं चलती। वह यह है कि जब शकुंतला दुष्यंत राजाके समीप भेजी गयी थी और वह उसका अंगीकार नहीं करता था तब शकुंतलाने राजाको स्मरण दिलानेकेलिये उसके छापकी अंगूठी अपनी अंगुलीसे निकालनेकेलिये यत्न किया। पर उसे वहां न पा उसने तत्संबंधीय भूतपूर्व, ध्यानमें धारण करने योग्य, एक घटना राजाके समीप निवेदन की वह यह है:—

कारुण्यं भवभूतिरेवतनुते †

"करुणारसका प्रतिपादन करना अकेले भवभूतिकाही काम है।" और यथार्थमें संस्कृतके सब कवियोंमें इसके संबंधसे उसकी समता करनेवाले दो तीन स्यातही निकलें, पर उससे श्रेष्ठ तो कोई भी नहीं है। एतावता पीछे जिस प्रकारसे कालिदासके कवित्व गुण-विशेषके विषयमें उदात्त रसका नामोल्लेख किया गया है वैसेहीं भवभूतिके विषयमें करुणारसका उल्लिखित करना युक्तिसंगत बोध होता है।

इस रसका यथार्थ निरूपण करनेकी अनोखी हथौटी अपने कवि को क्योंकर प्राप्त हुई सो जान लेनेकेलिये गंभीर विचारोंकी उलझ-नमें फंसनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। कविताका तत्त्व सहृदयता है, अर्थात् सर्व्व साधारण और कविमें इतनीही विशेषता है कि हृद-यकी नाना प्रकारकी वृत्तियां (जिनकी पारिभाषिक संज्ञा रस है) कवि को प्रकृतितः अत्यंत सूक्ष्मता एवं स्पष्टतापूर्व्वक भासित होती हैं। भ-वभूतिमें यह शक्ति प्रकृतिदत्त थी और उसके सहायक और भी दो

---

"नन्वेकस्मिन् दिवसे नवमालिकामंडपे नलिनीपत्रभाजनगतमुदकं तव हस्ते सन्नि-हितमासीत्। तत्क्षणे स मे पुत्रकृतको दीर्घापाङ्गो नाम मृगपोतक उपस्थितः। त्वयायं तावत्प्रथमं पिबात्वित्यनुकांपिना उपच्छन्दित उदकेन। नपुनस्तेऽपरिचयाद्धस्ताभ्यासमुप-गतः। पश्चात्तस्मिन्नेव मया गृहीते सलिलेऽनेन कृतः प्रणयः। तदा त्वमित्थं प्रहसितोऽसि। सर्व्वः सगंधेषु विश्वसितीति। द्वावप्यत्रारण्यकाविति।"

अंक ५

† यह एक वाक्य है वा किसी समूचे श्लोकका अंश है सो निश्चयपूर्व्वक नहीं कहा जा सकता। हां इतना अलबत्ते कहा जा सकता है कि शार्दूलविक्रीडित वृत्त की नांई इसकी रचना है।

गुण उसमें थे। वे उसके मनकी कोमलता और शुद्धता हैं। उसके इन गुणों का सविस्तर वर्णन पीछे बहुत कुछ हो चुका है, इसके सिवाय वे उसके कैसे आधीन थे इसके उत्कृष्ट प्रमाण शृंगार और वीर रसमें स्पष्ट रूपसे पाये जाते हैं। तौ फिर करुणा रसकी बातही क्या पूंछना है? यहां पर वे परमावश्यक होनेके कारण उनके योगसे यह रस परमोत्कर्षको प्राप्त हुआ है।

पूर्वोक्त तीन रसोंके अतिरिक्त औरभी जो रस भवभूतिके नाटकों में उपलब्ध होते हैं उनके उदाहरण यहांपर उद्धृत करना अनावश्यक जान पड़ता है। क्योंकि उनमेंसे बहुतेरे तो केवल गौण अर्थात् अप्रसंगवशात् सिद्ध कियेहुए हैं; और अपर स्वरूपतया शुद्ध नहीं दीख पड़ते किंतु अन्य रसांतर्गत बोध होते हैं। यह कहां कहांपर लाये गये हैं सो प्रत्येक नाटकके वर्णनके साथ पीछे लिखा जा चुका है; हमें भरोसा है कि उस वर्णनको पढ़ हमारे जिज्ञासु पाठकगण उक्त स्थानोंको ढूंढ़ ले सकेंगे।

पीछे एक स्थानपर संस्कृत कवितामें सृष्ट पदार्थोंका वर्णन किस ढंगका पाया जाता है सो लिखकर उसमें और आधुनिक अंगरेजी कवितामें प्रधान भेद क्या पाया जाता है आदि दिखलाया गया था। तौभी भवभूतिके विषयमें यहांपर यह लिखना अनावश्यक न समझा जायगा कि वहांपर संस्कृतके प्रायः सब कवियोंपर जो आक्षेप किया गया है वह केवल अकेले भवभूतिके विषयमेंही चरितार्थ नहीं होता। आधुनिक अंगरेज़ कवियोंकी सजावटके ढंगपर कियेहुए सृष्टिविभवके वर्णन केवल भवभूतिकेही ग्रंथोंमें पाये जाते हैं। इस कथनका यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि संस्कृतके और कवियोंने सृष्ट पदार्थोंका वर्णन लिखाही नहीं; हां इतना अवश्य कहा जासकता है कि उनका

ढंग निराला है। उनके वर्णनमें कतिपय अत्यंत प्रसिद्ध * एवं निश्चित बातें कधी छूटही नहीं सकतीं; जिन्हें पढ़ यह शंका उपस्थित होती है कि—उनमेंसे बहुतेरोंने--निदान आधुनिक लोगोंने निजवर्णित प्रकृति दृश्योंका स्वयं अनुभव कदापि नहीं लिया किंतु प्राचीन ग्रंथोंको पढ़ वैसा लिख दिया है। अस्तु; तौ हम समझते हैं कि भवभूति ऐसे कवियोंमें से न था, हमें यहभी विश्वास है कि इस विषयमें और सब लोग भी हमारा अनुमोदन करेंगे। वर्डस्वर्थ कविके विषयमें यह बात प्रसिद्ध है कि उसने अपनी आंखोंसे सृष्टिका जो दृश्य, पदार्थ वा चमत्कार देखा नहीं उसका वर्णनही उसने नहीं किया। यही बात बहुधा हमारे कविके विषयमें भी घटित हो सकती है; क्योंकि संस्कृतके सब कवियोंमें विशेषकर उसीने जो ठौर ठौरपर प्रकृतिके उत्तमोत्तम वर्णन लिखे हैं उन्हें कविकपोलकल्पित वा अयथार्थ कहना युक्तियुक्त नहीं बोध होता। संस्कृतके शेष कवियों और भवभूतिके वैसेही अं-

* आनंदका विषय है कि भाषा काव्यकी उन्नति करनेके अभिप्रायसे आजकल बहुतेरे नगरोंमें कविसमाज, कविसभा, और कविमण्डलप्रभृति स्थापित किये गये हैं, जो यथावसर समस्या दे उत्तम पूरकोंको उपहारद्वारा पुरस्कृत करते रहते हैं। उक्त सभाओंद्वारा दी हुई समस्याओंकी पूर्त्तियोंमेंसे जो जो पूर्त्तियां हमारे दृष्टिपथमें आयी हैं उन सबमें सिवाय परम प्रसिद्ध एवं निश्चित उपमा और उत्प्रेक्षादिकोंके पिष्टपेषणके कोई नई एवं अनूठी उक्ति कि जिसकेद्वारा लोकोत्तर आनंद उपजता है, देखनेमें नहीं आती। तिसपर भी तुर्रा यह है कि उनके संचालकगण उन्हींमें कृतार्थता मानलेते हैं। हम समझते हैं कि उक्त कवितारसमर्मज्ञ एवं सहृदय संचालकगणोंको सोचना चाहिये कि जिस प्रकारकी पूर्त्तियां आजकल होती हैं उनकी भाषा काव्यमें ऊनता नहीं है किंतु वे आवश्यकतासे कहीं अधिक हैं। अतः उन्हें समुचित है कि वे निज प्रतिज्ञानुसार भाषा काव्यको उन्नत एवं चिरस्थित करनेके हेतु सृष्ट पदार्थ वर्णनादि अकृत्रिम काव्यरचनाकी ओर वर्त्तमान कवियोंका चित्त आकृष्ट करें और उन्हें वैसे काव्य प्रणीत करनेकी उपयुक्त सामग्री वर्त्तमान उन्नत भाषाओंसे लेकर प्रदानकरें।

गरेज़ कवियोंके प्रकृति वर्णनोंमें दूसरा एक महद्भेद यहभी स्पष्ट-रूपसे दृग्गोचर होता है कि पहिलोंका वर्णन प्रायः अलंकाररूप–अर्थात् उपमा रूपक और उत्प्रेक्षादिगर्भित–रहता है; पर दूसरोंका वैसा न रहकर बहुतही सादा रहता है–अर्थात् तत्तत् सृष्ट पदार्थोंके केवल स्वरूपका वर्णन रहता है। इससे यही प्रतिपादित हुआ कि प्रकृति देवीके भांति भांतिके मनोहर दृश्योंका अवलोकन करनेका भवभूतिको प्रकृतिजात परमोत्साह था। हमारे इस अनुमानका परिचय हमारे मननशील पाठकोंको निम्नोद्धृत उदाहरणोंद्वारा सहजहींमें मिल जायगा।

दंडकारण्यांतर्गत सृष्टिविभवका वर्णनः—

इहसमदशकुंताक्रांतवानीरवीरुत्–
प्रसवसुरभिशीतस्वच्छतोया वहन्ति।
फलभरपरिणामश्यामजंबूनिकुंज–
स्खलनमुखरभूरिस्रोतसो निर्झरिण्यः॥

उत्तररामचरित २

एते तएव गिरयो विरुवन्मयूरा–
स्तान्येव मत्तहरिणानि वनस्थलानि।
आमंजुवंजुललतानि च तान्यमूनि
नीरंध्रनीलनिचुलानि सरित्तटानि॥

——२

एते ते कुहरेषु गद्गदनदद्गोदावरीवारयो
मेघालंबितमौलिनीलशिखराः क्षोणीभृतो दक्षिणाः।

अन्योऽन्यप्रतिघातसंकुलचलत्कल्लोलकोलाहलै-
रुत्तालास्त इमे गभीरपयसः पुण्याः सरित्संगमाः ॥

——२

रामः-देवि ! रमणीयमेतत्पंपासरः ।

एतस्मिन् मदकलमल्लिकाख्यपक्ष-
व्याधूतस्फुरदुरुदंडपुंडरीकाः ।
बाष्पांभःपरिपतनोद्गमांतराले
संदृष्टाः कुवलयिनो भुवो विभागाः ॥

उत्तररामचरित १

'मालती माधव' का नवम अङ्क प्रकृतिके भिन्न २ दृश्योंके वर्णनसे भरा हुआ है । हमारे पाठकोंमेंसे जिन्हें काव्यपरिचयके योगसे तादृश काव्यरसिकता प्राप्त हो गयी हो उन्हें उचित है कि वे उसे मननपूर्व्वक पूर्णरूपसे पढ़ें। संप्रति सर्व्व साधारणके अवलोकनार्थ कतिपय पद्य नीचे प्रकाशित किये जाते हैं ।

सौदामिनी—भोस्तथाहमुत्पतिता यथा सकल एष गिरिनगर
ग्रामसरिदरण्यव्यतिकरश्चक्षुषा परिक्षिप्यते ।
( पश्चाद्विलोक्य ) साधु साधु ।

पद्मावतीविमलवारिविशालसिंधु-
पारासरित्परिकरच्छलतो बिभर्ति ।
उत्तुंगसौधसुरमंदिरगोपुराट्ट-

संघट्टपाटितविमुक्तमिवांतरीक्षम् ॥

अपि च ।

सैषा विभाति लवणा ललितोर्मिपंक्ति-
रभ्रागमेजनपदप्रमदाय यस्याः ।
गोगर्भिणीप्रियनवोलपमालभारि-
सेव्योपकंठविपिनावलयो विभांति ॥

( अन्यतोऽवलोक्य )

अयमसौ भगवत्याः सिंधोर्दारितरसातलप्रायस्तटप्रपातः ।

यत्रत्य एष तुमुलो ध्वनिरंबुगर्भ-
गंभीरनूतनघनस्तनितप्रचंडः ।
पर्य्यंतभूधरनिकुंजविजृंभमाण-
हेरंबकंठरसितप्रतिमानमेति ॥

एताश्चंदनाश्वकर्णसरलपाटलप्रायतरुगहनाः परिणतमालूरसुरभयोऽरण्यगिरिभूमयः स्मारयंति खलु तरुणकदंबजंबूवनावनद्धांधकारगुरुनिकुंजगभीरगह्वरोद्गारगोदावरीरवमुखरितविशालमेखलाभुत्रो दक्षिणारण्यभूधरान् । अयं च मधुमतीसिंधुसंभेदपावनो भगवान् भवानीपतिरपौरुषेयप्रतिष्ठः सुवर्णबिंदुरित्याख्यायते—

मकरंदः—सखे प्रसीद । पश्य ।

वानीरप्रसवैर्निकुंजसरितामासक्तवासं पयः

पर्य्यंतेषु च यूथिकासुमनसामुज्जृंभितं जालकैः।
उन्मीलत्कुटजप्रहासिषु गिरेरालंब्य सानूनितः
प्राग्भारेषु शिखंडितांडवविधौ मेघैर्वितानाय्यते॥

श्रीरामसीताप्रभृति पुष्पकारूढ़ हो जब अयोध्याको लौटे हैं तब मलयाचलकी ओर तर्जनी दिखलाकर रामचंद्रजी लक्ष्मणजी से कहते हैं:—

रामः [ अंगुल्या निर्दिशन् ] वत्स।

एता भुवः परिचिनोषि मिलत्तमाल-
च्छायांधकारिततुषारनिकुञ्जपुञ्जाः।
उन्मूर्च्छदच्छमलयाचलतुंगशृंग-
प्राग्भारनिष्पतितनिर्झरपूरभाजः॥

महावीरचरित ७

लक्ष्मणजीको भी वहांकी एक भूतपूर्व घटनाका स्मरण हो आया अतः वे उसका वर्णन करते हैं। यह घटना पावसकी एक रात्रि को उनकी जो अवस्था हुई सो है।

गर्ज्जाजर्ज्जरितासु दिक्षु बधिरे तत्स्फूर्जथुस्फूर्जिते
व्योम्नि भ्राम्यति दुष्प्रभंजनजवादभ्रेऽप्यदभ्रेमुहुः।
आक्षिप्यांधयति द्रुमांधतमसे चक्षुः प्रविश्य क्षपा
यत्रासीत् क्षपिता क्षरज्जलधरे त्वक्सारलक्षीकृते॥

महावीरचरित ७

उक्त समस्त संग्रह बाह्यसृष्टिवर्णनप्रधान हैं। अब अंतः सृष्टिके

अर्थात् अंतष्करणकी भिन्न भिन्न वृत्तियोंका वर्णन भवभूतिने जहां जहां किया है उनके थोड़ेसे उदाहरण नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

श्रीरामजी सीताजीके हाथको स्वयं निज गलेमें डाल तज्जन्य सुखानुभव करतेहुए कहते हैं.—

विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दुःखमिति वा
प्रमोहो निद्रा वा किमु विषविसर्पः किमु मदः।
तव स्पर्शे स्पर्शे मम हि परिमूढेंद्रियगणो
विकारश्चैतन्यं भ्रमयति च संमीलयति च॥

उत्तर रामचरित १

श्रीरामचंद्रजीके मूर्च्छित होजानेपर सीताजी अदृश्य रूपसे उनके ललाटको छूती हैं, और उनके करस्पर्शके योगसे सचेत हो पुनः वे कहते हैं:—

स्पर्शः पुरा परिचितो नियतं स एष
संजीवनश्च मनसः परिमोहणश्च।
संतापजां सपदि यः प्रतिहत्यमूर्च्छा
मानंददेन जडतां पुनरातनोति॥

उत्तर रामचरित ३

श्रीरामजीको देखतेही लवकी शत्रुता और औद्धत्तता बुद्धिसहसा लुप्त हो गयी और तत्क्षण उसके मनकी जो अवस्था हुई उसका वह वर्णन करता है:—

लवः—आश्चर्य्यम्।

विरोधो विश्रांतः प्रसरति रसो निर्वृतिघन-
स्तदौद्धत्यं क्वापि व्रजति विनयः प्रह्वयति माम्।

झटित्यस्मिन् दृष्टे किमपि परवानस्मि यदि वा
महार्घस्तीर्थानामिव हि महतां कोऽप्यतिशयः ॥

उत्तर रामचरित ६

भवभूतिने इनके अतिरिक्त और भी प्रसंगोंके वर्णन लिखे हैं। वे सब वर्णन भिन्न २ रसोंके हैं, विषय क्रमानुरोधसे पाठकोंके अवलोकनार्थ हम उनके भी थोड़ेसे उदाहरण नीचे लिख देते हैं:-

( मालतीका वर्णन )

( शृंगारप्रधान )

सा रामणीयकनिधेरधिदेवता वा
सौंदर्य्यसारसमुदायनिकेतनं वा।
तस्याः सखे नियतमिंदुसुधामृणाल-
ज्योत्स्नादि कारणमभून्मदनश्च वेधाः ॥

मालतीमाधव १

( मालतीने लवंगिकाके धोखे माधवका आलिंगन किया उसका वर्णन )

एकीकृतस्त्वचि निषिक्त इवावपीड्य
निर्भुग्नपीनकुचकुड्मलयाऽनया मे।
कर्पूरहारहरिचंदनचंद्रकांत-
निष्यंदशैवलमृणालहिमादिवर्गः ॥

६

( मालती मूर्च्छित होकर पुनः सचेत होती है। )

भवति विततश्वासा नासा प्रसन्नपयोधरं

हृदयमपिच स्निग्धं चक्षुर्निजप्रकृतौस्थितम्।
तदनु वदनं मूर्च्छाच्छेदात्प्रसादि विराजते
परिगतमिव प्रारंभेऽन्हः श्रिया सरसीरुहम्॥ *

१०

(लवकुशको देख श्रीरामचंद्रजीने सीताजीको पहचाना है सो प्रसंग)

अपि जनकसुतायास्तच्च तच्चानुरूपं
स्फुटमिह शिशुयुग्मे नैपुणोन्नेयमस्ति।
ननु पुनरिव तन्मे गोचरीभूतमक्ष्णो-
रभिनवशतपत्रश्रीमदास्यंप्रि यायाः॥

उत्तर रामचरित ६

---

* ठीक ऐसीही बात विक्रमोर्वशी में भी वर्णित है:—

आविर्भूते शशिनि तमसा रिच्यमानेव रात्रिः
नैशस्यार्चिर्हुतभुजइव छिन्नभूयिष्ठधूमा।
मोहेनांतर्वरतनुरियं दृश्यते मुच्यमाना
गंगा रोधःपतनकलुषागच्छतीव प्रसादम्॥

अंक १

जान पड़ता है इसी श्लोकको सामने रख उक्त श्लोक लिखा गया है। तौभी यह भवभूति के पूर्वोक्त दो गुणोंकी विशेषता उत्कृष्टतया प्रमाणित करता है। एक तो उसकी स्वतंत्र काव्य रचनाकी दृढ़ प्रतिज्ञा, और दूसरा अभी ऊपर जो कहा गया है कि उसके वर्णन उपमाद्यलंकरस्वरूप नहीं रहते हैं किन्तु वे यथावत् रहते हैं।

( श्रीसीताजी जब बनवासमें थीं तबके उनके अलंकारादि रहित मुखकी मुग्ध शोभाका श्रीरामचंद्रजी स्मरण करते हैं। )

श्रमांबुशिशिरीभवत्प्रसृतमंदमंदाकिनी-
मरुत्तरलितालकाकुलललाटचंद्रद्युति ।
अकुंकुमकलंकितोज्वलकपोलमुत्प्रेक्ष्यते
निराभरणसुंदरश्रवणपाशसौम्यं मुखम् ॥

———६

( वीररसप्रधान )

( कुशका वर्णन )

दृष्टिस्तृणीकृतजगत्त्रियसत्वसारा
धीरोद्धता नमयतीव गतिर्धरित्रीम् ।
कौमारकेऽपि गिरिवद्गुरुतां दधानो
वीरो रसः किमयमैत्युत दर्पएव ॥

उत्तर रामचरित ६

( चंद्रकेतुके युद्धार्थ ललकारने पर लवका बर्त्ताव )

व्यपवर्त्तत एष बालवीरः
पृतनानिमर्थनात् त्वयोपहूतः ।
स्तनयित्नुरवादिभावलीना-
मवमर्दादि व दृप्तसिंहशावः ॥

———५

( वात्सल्यप्रधान )

( सीताजीकी बाल्यावस्थाका वर्णन )

अनियतरुदितस्मितं विराजत्

कतिपयकोमलदंतकुड्मलाग्रम् ।
वदनकमलकं शिशोः स्मरामि
स्खलदसमंजसमंजु जल्पितं ते ॥ ×

उत्तर रामचरित ३

[ हास्यप्रधान ]

( अश्वका वर्णन )

पश्चात्पुच्छं वहति विपुलं तच्च धूनोत्यजस्रं
दीर्घग्रीवः स भवति खुरास्तस्य चत्वार एव ।
शष्पाण्यत्ति प्रकिरति शकृत्पिंडकानाम्रमात्रान्
किंवा ख्यातैर्व्रजति स पुनर्दूरमेह्येहि यामः ॥

३———४

अब केवल एकही रसके उदाहरण लिखनेको रह गये हैं । पीछे

---

× संस्कृतकाव्यरसिकोंको यह श्लोक पढ़ 'शकुंतलां' तर्गत एतत्समानार्थक श्लोकका स्मरण हुए विना न रहेगा वह श्लोक यह है:—

आलक्ष्यदंतमुकुलाननिमित्तहासै—
रव्यक्तवर्णरमणीयवचः प्रवृत्तीन् ।
अंकाश्रयप्रणयिनस्तनयान् वहंतो
धन्यास्तदंगरजसा मलिनीभवंति ॥

अंक ७

इस श्लोककी विशेष प्रसिद्धिका कारण पीछे उल्लिखित होही चुका है कि शेझी नामक फरासीस विद्वान्को इस श्लोकने नितांत तल्लीन करडाला था ॥

कालिदासके विषयमें लिखतीबार उदात्त रसके बहुत कुछ उदाहरण लिखे गये हैं क्योंकि वे उसके ग्रंथोंमें ठौर ठौरपर पाये जाते हैं। पर भवभूतिके नाटकोंकी बात उससे भिन्न है। 'मालती माधव' के नवम और 'महावीरचरित' के पांचवें और सातवें अंकके अतिरिक्त उक्त रसके उदाहरण अन्यत्र स्यात ही पाये जाते हैं। और इसका कारण भी स्पष्ट ही है। काव्य रचयिताको जिसप्रकार स्वेच्छानुसार अपने ग्रंथमें विषय सन्निविष्ट करनेकेलिये अवकाश मिलजाता है उस प्रकारसे नाटक प्रणेताको नहीं मिलता, आख्यायिकामें हेरफेर कर नूतन रचना करनेका अधिकार उसे यद्यपि प्राप्त है तथापि पात्र प्रसंग और स्थलादि औचित्यकी ओर उसे अवश्यमेव ध्यान देना पड़ता है-अर्थात् पात्रविशेष, प्रसंगविशेष और स्थलविशेषको जहां जितनी बात शोभाप्रद हो वहां उतनी ही प्रयुक्त करना पड़ती है। इसके सिवाय नाटक तो संसारकी घटनाओं का चित्र है। एतावता सर्व्व साधारणमें बोलचाल और रहनसहन का ढंग जैसा प्रचलित होता है वैसाही लिखना पड़ता है। यही सब बाधाएँ हैं कि जिनके योगसे नाटककर्त्ता अपने समस्त गुण एकही नाटकमें प्रदर्शित नहीं कर सकता। सारांश, कवियोंके विशेषतः नाटक प्रणेतृगणोंके एक दो ग्रंथों को देख भालकर उनके गुणों की सीमा निश्चित करना अत्यंत अनुपयुक्त है। अस्तु; अब ऊपर कहे हुए रसोंके कतिपय उदाहरण रसिक पाठकोंकी सेवामें भेंट किये जाते हैं, उन्हें पढ़ उनको विश्वास होजायगा कि यह रस यद्यपि बहुत थोड़े स्थानों पर लाया गया है तथापि इसे लिखनेकी अपने कविकी हथौटी बड़ी विलक्षण थी।

संपातिः—नूनमद्य वत्सजटायुरभिवादनाय मलयकंदरकुलाय मुपासीदति।

तथाहि—

पर्य्यायात्क्षणदृष्टनष्टककुभः संवर्त्तविस्तारयो-
र्नीहारीकृतमेघमोचितधुतव्यक्तस्फुरद्विद्युतः।
आरात् कीर्णकणात्कणीकृतगुरुग्रावोच्चयश्रेणयः
श्यैनेयस्य बृहत्पतत्रधुतयः प्रख्यापयंत्यागमम्॥

महावीरचरित ५

जटायुः—तदयमार्यो मन्वन्तरपुराणगृध्रराजः संपातिः। अहो भ्रातृस्नेहः!

पुराकल्पे दूरोत्पतनखुरलीकेलिजनिता-
दतिप्रत्यासंगात् परितपति गात्राणि तपने।
अनष्टभ्यासौ मामुपरि ततपक्षः शिशुरिति
स्वपक्षाभ्यां श्लोषादविकलमरक्षत् करुणया॥

——५

जटायुः—( उत्पत्य। गगनगमनमभिनीय )

एषोऽहं प्रलयमरुत्प्रचंडरंहः
संक्षिप्तप्रथिम पिबन्निवांतरीक्षम्।
क्षेपीयो मलयगिरेर्निवासभूभृत्-
संसक्तक्षितिरुहजालमभ्युपेतः॥

( लंका दहनके समयका शोक )

॥ नेपथ्ये ॥

भ्रांतीः सप्ताधिकानां प्रविदधरुणैरर्चिषां चक्रवालै-
र्द्राग्वीराणामलक्ष्यप्रसृतिरतिसमुत्तप्तसौक्म्यालयेषु।

अर्द्धप्लुष्टापसर्पद्रजनिचरभटोद्गाढकल्पांतशंकं
लंकां प्रौढो हुताशःसह परिदलितोऽब्धेस्त्रिकूटेन लीढे ॥

महावीरचरित ६

चंद्रकेतुद्वारा युद्धार्थ निमंत्रित हो लव उसकी ओर जानेको निकला; पर अपनेको पुनःसैन्यद्वारा आवेष्टित देख सक्रोध कहता है

लवः—धिग्जालमान् ।

अयं शैलाघातक्षुभितवडवावक्त्रहुतभुक्
प्रचंडक्रोधार्चिर्निचयकवलत्वं व्रजतु मे ।
समंतादुत्सर्पन् घनतुमुलसेनाकलकलः
पयोराशेरोघः प्रलयपवनास्फालित इव ॥

उत्तर रामचरित ५

भवभूतिके तीनों नाटकोंमेंसे इतने श्लोकोंका यहांपर लिखा जाना वस्तुतः अधिक बोध होता है। पर यह अभीष्ट न होनेके कारण एतदर्थ हमारा पाठकोंसे क्षमाप्रार्थी होना हमें आवश्यक नहीं बोध होता। हमारे देवोपम पूर्व्व पुरुषोंकी विशाल बुद्धिका ज्ञापक प्रत्यक्ष प्रमाण स्वरूप जो विद्याका महान् भंडार हमारे पास है—कि जो इस देशमात्रकी अति प्राचीन एवं अक्षय संपत्ति है; जिसे इसके पूर्व्व अपर देश निवासी राजागण अपहृत नहीं करसके; और जो जगत् प्रलयपर्य्यंत हमारे नामकी प्राणपणसे रक्षा करनेके लिये बद्ध परिकर है; वर्त्तमान निकृष्ट अवस्थाके कारण हमलोग समस्त जगकी दृष्टिमें कैसेही दीन हीन दीख पड़तेहों पर तौभी जिसकी ओर देख अभीलों लोग हमें समादृत करते हैं; और इतः पर सुदैव वशात् यदि हमलोगोंका उत्कर्ष

पुनः हुआही तौ जिसके बीज स्वरूपहुए विना वह होही न सकेगा—उसके विषयमें केवल अंधपरंपराद्वारा सामान्यतः शुष्क अर्थवाद करनेकी अपेक्षा उसका यथार्थरूप और उसकी योग्यता सर्वसाधारणको प्रत्यक्ष करादेनेके लिये जो यत्न करता हो उसका पाठकोंके पठन परिश्रमार्थ पद पदपर क्षमाप्रार्थी होना हम अत्यंत अनुचित समझते हैं। जिस प्रकार किसी अबोध मनुष्यको उसके पिताका धरतीमें गड़ाहुआ अतुल धन पुनः दृग्गोचर करादेनेवाले पुरुषको उसे परिश्रम देनेके हेतु संकोच माननेकी कोई आवश्यकता नहीं है; उसी प्रकारसे अपने प्राचीन कविवरोंके वाग्रत्नोंकी सुंदरताको अपने सर्व्व साधारण पाठकोंके बुद्धिक्षेत्रमें लादेनेकेलिये जो यत्न करता है उसे भी-वारंवार अपने पाठकोंसे क्षमा मांगनेकी वैसी कुछ आवश्यकता नहीं है। अस्तु; हमारा अभिप्राय इतनाही है कि जिस प्रीति एवं उत्साहके साथ हमने यह गुरुतर काम हाथमें लिया है, उसी भावको हमारे पाठकगणोंको अपने चित्तमें धारण कर हमारी सहायता करनी चाहिये; हमें भरोसा है कि हमारे रसिक पाठकगण हमारी प्रार्थना का सानंद स्वीकार करेंगे।

संस्कृतके कवियोंमें, परम विख्यात जो कालिदास और भवभूति उनके विषयमें हमें जो जो उचित जान पड़ा सो हमने अपने विवेकी पाठकोंकी सेवामें सानुनय भेंट किया। अब यहांपर लेखके आदिमें जो प्रस्ताव किया है उसके विषयमें कुछ लिखना आवश्यक जान पड़ता है; कालिदास और भवभूति की समानता करनेवाला तीसरा कोई कवि नहीं है अतः संस्कृतके परमोत्कृष्ट कविवृंदमें यह दोही परिणत किये जाते हैं। इन दोनोंकी जैसी ही उत्कृष्ट प्रतिभा प्रकृतिजात थी वैसेही भाषाभी इनके आधीन अर्थात् अभिप्रायानुसारिणी थी। दोनों

की कल्पना और पदरचनामें † नितांत सरलता, प्रौढ़ता और रसिक-ताादि जो महाकवियोंके गुण हैं सो पूर्णरूपसे दृष्टिगत होते हैं। दोनों का जीवनकाल एक ही था वा कुछ २ निकटवर्त्ती था आदिके विषय में ठीक ठीक नहीं कहा जा सक्ता। तौभी अत्यन्त प्राचीन कालसे लोगोंकी दंतकथाओंके कारण दोनोंके कालकी ऐसी कुछ गुत्थम गुत्था होगयी है कि इतःपर उसका सुरझ जाना असंभवसा बोध होता है, अनुसंधानप्रिय पंडितगण उसे नष्ट करने के लिये प्रबल प्र-माणोंको भलेही उपस्थित करें, पर ये उभय कविमणि भोज राजा की सभाके कवियोंमें शिरोरत्न थे, उस गुणिजनैकपक्षपाती राजाने उनका कंठमणिकी नाईं संतत बड़े लाड़चावसे भरण पोषण किया है, घटना कैसीही क्षुद्र क्यों न हो—विषय तुच्छ भलेही हो, पर तौभी अपनी अस्खलित सरस्वतीके रससे वे लोग उसे भूषित करते, दोनों की प्रवचनपटुता तथा उक्ति प्रत्युक्तिमें सदैव झटापटी हुआही करती, और परस्परकी रसपूरित कृत्तियोंको देख क्षणभरकेलिये स्पर्धाको भूल हृदयोल्लास भरित हो उनका अभिनंदन करना, आदि असत्यमय भावनाओंमेंही रंगजाना मनको प्यारा लगता है; और जिन वृथा सत्याभिमानी निठुर अनुसंधानशील लोगोंने उक्त मनोहर भ्रमोंको नष्ट करनेके हेतु अपनी बुद्धिको कष्ट दिया है उन्हें शतशः शाप देनेके लिये उद्यत हो उनके सर्वथा निर्द्धारित सत्यकी उपेक्षा करनेको वे त-निक भी नहीं हिचकते !

† हां यह बात अवश्य देखी जाती है कि पूर्व्वोल्लेखानुसार भवभूतिके ग्रंथोंमें लंबे २ समासघटक पदपाये जाते हैं; परसाथही वे सुबोध हैं और बहुत थोड़े स्थानों पर प्रसंगानुरोधके कारण व्यवहृत किये गये हैं। अतः उक्त उल्लेखके विरोधी नहीं हो सक्ते॥

—— ——